इकाई -1 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति : अध्ययन के विषय के रूप में ,परिभाषा, क्षेत्र व प्रकृति

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ

1.4 परिभाषायें

1.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र

1.6 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति

1.7 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में

1.8 नामकरण की समस्या

1.9 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय राजनीति

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.15 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में प्रत्येक राष्ट्र (कर्ता) अपने स्व-प्रस्तावित राष्ट्रीय हितों और अपने उपलब्ध शक्ति संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में अपनी नीति और भूमिका का निर्धारण करता है। राष्ट्रीय हित की प्राप्ति की संभावना से ही राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के सम्पर्क में आते हैं। इन्हीं सम्बन्धों की समष्टि को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कहते हैं। लौकिक जगत से जुड़ी अन्य वस्तुओं की भाँति ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी परिवर्तन शील है क्योंकि पर्यावरण के प्रभाव से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इसी परिवर्तनशील अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और तथ्यों के अध्ययन के लिये अनेक तरीके या उपागम अपनाये जा सकते हैं। ये सभी एक दूसरे के पूरक हैं।

1.2 उद्देश्य

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अब तक के पांच दशकों में राष्ट्रों को इस बात का भली भाँति एहसास हो गया है कि युद्ध से विध्वंश ही हो सकता है, किसी समस्या का स्थायी समाधान नहीं। अब राष्ट्र परस्पर जुड़ कर विकास की यात्रा तय करना चाहते हैं। इस सोच में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति या राष्ट्रों के मध्य राजनीति कुछ ज्यादा सक्रिय और ज्यादा जीवंत हो गयी है।

इस इकाई का उद्देश्य अध्येता को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सामान्य परिचय देना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अर्थ, उसके स्वरूप तथा क्षेत्र से परिचित हो सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में विभेद कर सकेंगे।

1.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ पहले यूरोप की राजनीति से ही लिया जाता था। उस समय समूचे विश्व में यूरोपीय राष्ट्रों की राजनीत छाई हुई थी । एशिया तथा अफ्रीका में आर्थिक एवं औपनिवेशिक विस्तार के लिये यूरोपीय राज्य युद्ध तथा कूटनीतिक दाव-पेचों में व्यस्त थे। यूरोपीय देश शक्ति सम्पन्न थे उनकी औद्योगिक प्रगति हो चुकी थी तथा उनकी विस्तारवादी महत्वाकांक्षायें थी। इसके विपरीत गैर यूरोपीय देशों की राजनीति बहुत कुछ शांत तथा स्थानीय थी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद से वातावरण बदलने लगा। 1919-1945 के बीच विश्व के एक बड़े भाग में आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और तकनीकी क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अणुशक्ति ने राष्ट्रों की राजनीति और सामरिक नीति को एक नया मोड़ दिया। साम्राज्यवाद के विरूद्ध जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। विश्व तथा अफ्रीका का प्रभाव एवं प्रभुत्व तेजी से बढ़ा और उनकी उपेक्षा करना साम्राज्यवादी देशों के लिये संभव नहीं रहा। इन सब क्रिया प्रतिक्रियाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप को बदल दिया तथा उसके आकार तथा अयामों को सही माने में अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया। इसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति केवल यूरोप मात्र की राजनीति नहीं रह गयी और एक स्वतंत्र विषय के रूप में इसका विकास प्रारभ्म हुआ।

1.4 परिभाषायें

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति को विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। पहले हम लोग कुछ परिभाषायें ले रहे हैं उसके बाद उसके विषय क्षेत्र की व्याख्या करेंगेः-

हैन्स मार्गेन्थो: राष्ट्रों के मध्य शक्ति के लिये संघर्ष, तथा उसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहलाता है।

फेलिक्स ग्रास: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वास्तव में राष्ट्रों की विदेश नीति का अध्ययन ही है।

स्प्राउट: स्वतंत्र राजनीति समुदायों, अर्थात राज्यों, के अपने अपने उद्देश्यों, अथवा हितों के आपसी विरोध प्रतिरोध या संघर्ष से उत्पन्न उनकी क्रिया, प्रतिक्रियाओं और संबंधों का अध्ययन ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है।

के. डबलू. थामसन: राष्ट्रों के बीच छिड़ी प्रतिस्पर्द्धा के साथ साथ उनके पारस्परिक संबंधों को सुधारने या बिगाड़ने वाली परिस्थितियों और संस्थाओं के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहते हैं।

हार्टमैन: अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों से अभिप्राय उन प्रक्रियाओं के अध्ययन से है जिनके द्वारा राज्य अपने राष्ट्रीय हितों का सामंजस्य अन्य राज्यों के राष्ट्रीय हितों के साथ बैठाते हैं।

बर्टन: अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में सामान्य बातों के अतिरिक्त सभी घटनायें और परिस्थितियां भी सम्मिलित हैं जिनका प्रभाव एक से अधिक राज्यों पर पड़ता है।

हैन्स मार्गेन्थो का विचार है कि शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख तत्व है। प्रत्येक राष्ट्र शक्ति के लिये प्रयत्न करता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शक्ति की राजनीति है। शक्ति राष्ट्रीय हित को बढ़ाने, प्राप्त करने तथा कार्यान्वित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर अपनी भूमिका निभाने के लिये अनिवार्य है। मार्गेन्थो का कहना है कि राष्ट्रों के बीच सभी सम्बन्ध राजनीतिक नहीं होते क्योंकि राष्ट्र साधारणतया ऐसे कार्य भी करते हैं जिनका सम्बन्ध शक्ति से नहीं होता। उदाहरण के लिए राष्ट्रों के अनेक कानूनी, आर्थिक, मानवीय और सांस्कृतिक कार्य कलापों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत नहीं गिना जा सकता। मार्गेन्थो का निष्कर्ष है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतियों के समान शक्ति के लिए संघर्ष का ही नाम है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के चहे कुछ भी उद्देश्य हों पर उसका तात्कालिक उद्देश्य हमेशा शक्ति ही रहता है। मार्गेन्थो के तर्क में बल अवश्य ही है। यद्यपि यह बात भी ध्यान में रखना चाहिए कि शक्ति एक साधन मात्र है साध्य नहीं। राष्ट्र केवल शक्ति के लिये ही कोई राजनीति संचालित नहीं करते। साथ ही शक्ति की अपनी सीमायें होती हैं।

1.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र

फेलिक्स ग्रास, रसेल एच. फिफील्ड आदि विद्वानों ने राष्ट्रों की विदेश नीतियों के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति माना है। यह तर्क दिया गया है कि जब तक हम राष्ट्रों की विदेश नीतियों को नहीं समझ लेंगे तब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को नहीं समझ सकते। इस प्रकार से यह बात स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रों की विदेश नीतियों में अटूट सम्बन्ध है पर एक बात जो नहीं मानी जा सकती वह यह है कि दोनों एक हैं अथवा विदेश नीतियों का अध्ययन मात्र ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है।

फ्रेड्रिक ए. साउन्डरमैन ("The Linkage between Foreign Policy and International Politics" in the Theory and Practice of International Nations – New Jersey 1966, pp. 16-23) ने लिखा है कि विदेश नीति के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पर्याय नहीं माना जा सकता। क्योंकि विदेश नीति की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र अधिक विस्तृत हैं जिसमें विदेश नीति के अध्ययन के अतिरिक्त और भी अनेक विषयों का अध्ययन शामिल है। यह बात सच है कि राष्ट्रीय हितों की रक्षा महत्पूर्ण ढंग से विदेश नीति द्वारा की जाती है और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन की यह महत्वपूर्ण सामग्री है पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का

अध्ययन न केवल यह जानने का प्रयत्न करता है कि अमुक देश की विदेश नीति क्या है पर यह भी देखता है कि कौन कौन से तत्व उस देश की विदेश नीति को प्रभावित करते हैं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन हमें विदेश नीति से निश्चित करने वाली प्रक्रिया से परिचित कराता है। विदेश नीति के अध्ययन को ही सब कुछ मानने के पीछे धारणा यह है कि विदेश नीति के निर्धारक व्यक्ति ही अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को बनाने बिगाड़ने व मोड़ने वाले होते हैं। वे लोग इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि कई बार अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण भी नीति निर्माताओं को कोई विशिष्ट नीति अपनाने के लिए बाध्य कर देता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण तथा विदेश नीति पर पड़ने वाले उसके प्रभाव की जानकारी भी शामिल है।

क्विंसी राइट ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के अन्तर्गत जिन बातों के अध्ययन को शामिल किया है वे इस प्रकार से हैं- विश्व में तनाव एवं हलचल की सामान्य दशा, आर्थिक, सांस्कृतिक राजनीतिक क्षेत्रों में राज्यों की पारस्परिक निर्भरता की मात्रा, कानून एवं मूल्यों का सामान्य स्तर, जनसंख्या तथा साधन, उपज और खपत जीवन के आदर्श, तथा विश्व राजनीति की स्थिति। इन सभी बातों के कारण हैराल्ड तथा माग्रेट स्प्राउट ने विदेश नीति को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक उप-विभाग बताया है।

कुछ अन्य विद्वानों ने अपनी अपनी परिभाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र को अपेक्षाकृत विस्तृत या सीमित किया है। चार्ल्स स्लेशर ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत सभी अन्तर्राज्य सम्बन्धों को शामिल किया है, यद्यपि वह यह मानता है कि इस प्रकार के सारे सम्बन्ध केवल राजनीतिक ही नहीं होते । पाल्मर पर्किन्स ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का सीधा सम्बन्ध राज्य प्रणाली से जोड़ा है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में विचारधारा और राष्ट्रीयता का भी प्रमुख स्थान है। विचारधारा आज की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख सूत्रधारों में से हैं। साम्यवाद, लोकतंत्र, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता आदि विचारधाराऐं अपने आप में प्रबल शक्तियां हैं। अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों पर इनका प्रमुख प्रभाव रहता है। एशिया तथा अफ्रीका की राजीनति बहुत कुछ राष्ट्रीयता की राजनीति है जिसका सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर निश्चित प्रभाव पड़ रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें, और उनसे सम्बन्धित उप संस्थायें भी काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ, तथा उससे संबंधित अन्य विशिष्ट संस्थाओं, का विश्व राजनीति के क्षेत्र और साधन दोनों रूपों में अपना स्थान है।

शान्ति और युद्ध जैसे विषय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में अपने आप ही शामिल हो जाते हैं। अन्त में यह कहा जा सकता है कि जिस देश से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए प्रयास किये जा रहे हैं तथा उसे एक वैज्ञानिक विषय बनाने के लिए सिद्धान्तों की खोज हो रही है,

उसके आधार पर अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अपने क्षेत्र में विभिन्न विषयों को समेटने और अपना क्षेत्र समुचित रूप में व्यापक करने को प्रयत्नशील है।

1.6 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति

विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की राजनीति ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है। यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विभिन्न राष्ट्र अपने हित साधन के लिये आपसी संबंधों में संघर्ष की जिस स्थिति में रहते हैं उसी का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तीन आवश्यक तत्व होते हैं: 1. राष्ट्रीय हित 2.संघर्ष और 3. शक्ति। राष्ट्रीय हित उद्देश्य हैं, संघर्ष स्थिति विशेष है, और शक्ति उद्देश्य प्राप्ति का साधन हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संघर्ष का विशेष महत्व है। अन्तर्राष्ट्रीय समाज में संघर्ष की स्थिति बनी ही रहती हैं, अतः शक्ति के माध्यम से सामन्जस्य की प्रक्रिया हमेशा चलती रहती है। संघर्ष की निरंतर उपस्थिति का मतलब यह नहीं है कि संसार के देश हमेशा एक दूसरे से टकराव रखते हैं। जिन देशों के हित समान होते हैं उनमें सहयोग भी होता है । दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संघर्ष और सहयोग दोनों ही शामिल हैं। सहयोग भी देखा जाय तो अंतिम रूप से संघर्ष का ही परिणाम है क्योंकि:

1- जिन देशों के हित परस्पर समान होते हैं वे आपस में सहयोग इसलिये करते हैं कि दूसरे राष्ट्रों के संघर्ष पर विजय पा सके, और

2- सहयोग की आशंका इसलिये की जाती है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्वभावतः संघर्षपूर्ण होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अन्य किसी भी राजनीति की तरह एक निरंतर क्रिया है - ऐसी क्रिया जिसमें संघर्ष के केन्द्रीय स्थान प्राप्त हैं

1.7 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को एक स्वतंत्र शास्त्र माना जा सकता है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में काफी मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वान इसे इतिहास का एक विशिष्ट विषय मानते हैं क्योंकि इस विषय का जन्म इतिहास के भिक्षु के रूप में हुआ है। वेल्स युनिवर्सिटी के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के पहले प्रोफेसर अल्फ्रेड जिमेर्न एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थे। इसी प्रकार अनेक विद्वान इसे राजनीति शास्त्र के व्यापक विज्ञान का एक स्वायत्त क्षेत्र मानते हैं।

जो विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र विषय मानते हैं उनमें से प्रमुख हैं- ए. डबलू. मैनिंग, क्विन्सी राइट, हाफसन। ए. डबलू. मैनिंग का प्रमुख तर्क यह है कि '' अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक वृहत विषय तथा विशाल सामाजिक विश्व का अंग है।'' इस सम्बन्ध में वो तीन बातें कहते हैं:-

1. सामाजिक विश्व के अन्तर्गत सम्पूर्ण संसार में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक जाल है, अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का स्वतंत्र अध्ययन जरूरी है।

2. इसके लिये एक सर्वव्यापी दृष्टिकोण जरूरी है और यह दृष्टिकोण तब तक सफल नहीं होगा जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को हम एक स्वतंत्र विषय न मान लें। अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर बहुत सारी घटनायें घटित होती हैं उन्हें समझने तथा सही संदर्भ में परखने तथा उनकी दिशाओं को जानने का यही सबसे अच्छा तरीका है।

3. यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की घटनाओं के सही स्वरूप को न समझ सकें, तथा समस्याओं के समाधान की दिशा में समुचित रूप से विचार न कर सकें, तो इसके अध्ययन का कोई लाभ नहीं होगा।

क्विन्सी राइट के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विषय आज दूसरे विभिन्न विषयों से लाभ उठाकर समन्वय का ढंग अपनाते हुए लगातार विकास की ओर बढ़ रहा है।

हाफसन यह प्रतिस्थापित करना चाहते हैं कि हम राज्यों के आन्तरिक मामलों का विवेकपूर्ण अध्ययन तभी कर सकते हैं जब उनकी बाह्य क्रियाओं का विशद, गहन और समुचित अध्ययन करें। स्पष्ट है कि इस अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में उतना ही मान्य है जितना कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शास्त्र में।

कैपर जानसन ने लिखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को हम इतिहास अथवा राजनीति शास्त्र का अंग नहीं मान सकते क्योंकि इसका क्षेत्र उनसे कहीं अधिक व्यापक है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शास्त्र जो सामग्री इकट्ठी करता है वह दूसरे शास्त्रों की सामग्री से भिन्न है। अतः सामाजिक विज्ञान में उसे एक स्वतंत्र शास्त्र मानना न्याय संगत है।

पी. डी. मर्चेन्ट, राबर्ट लारिंग, कैप्लान, जार्ज केनन आदि विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता देने को तैयार नहीं हैं। विरोध में निम्नलिखित तर्क दिया गया है:-

1. पहला तर्क यह दिया जाता है कि किसी भी शास्त्र के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है- निश्चित अध्ययन सामग्री, स्पष्ट गवेषणा पद्धति, और सर्वमान्य सिद्धान्त का विकास। परंतु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विषय इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

2.दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मुख्य कार्य राज्यों के पारस्परिक व्यवहारों और उनके प्रेरक तथ्यों का पूरा अध्ययन करना है, और यह अध्ययन वह स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकता, अपितु उसे राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल

आदि पर निर्भर रहना पड़ता है। इस स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र दर्जा देना ठीक नहीं है। कैप्लान इसे राजनीति शास्त्र अथवा राजनीति शास्त्र के विकास के रूप में मानना चाहता है।

दोनो पक्षों के तर्कों की व्याख्या के उपरान्त निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं-

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की अध्ययन सामग्री लगातार बढ़ रही है और इसका स्वरूप इतना जटिल तथा विशिष्ट बनता जा रहा है कि यह विषय किसी अन्य शास्त्र जैसे राजनीति शास्त्र, इतिहास, अन्तर्राष्ट्रीय कानून या अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नहीं रह सकता।

2. आज भले ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वतंत्र रूप पर संदेह किया जाये, लेकिन कल ऐसेा नहीं रहेगा। अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिये सिद्धान्तों का विवेचन होने लगा है। 1947 में प्रकाशित Politics Among Nations में मार्गेन्थो ने पहली बार एक व्यवस्थित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो यथार्थवादी कहलाता है। विभिन्न राज्यों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए पृथक विभागों की स्थापना की गई है। विकासशील देश तक इस दिशा में आगे बढ़ चुके हैं। उदाहरण के लिये भारत Indian School of International Studies इसको एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता दिलाने की ओर एक साहसिक कदम है।

1.8 नामकरण की समस्या

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विषय को व्यक्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध , अन्तर्राष्ट्रीय मामले तथा विश्व राजनीति आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बहुधा इन शब्दों का प्रयोग यर्थाथवादीरूप में किया जाता है जो कि गलत है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में काफी व्यापकता पाई जाती है। उसके अन्तर्गत राष्ट्रों के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कानूनी राजनीतिक खोज एवं अन्वेषण सम्बन्धी, और इसी प्रकार के सभी सम्बन्ध आ जाते हैं। इन शब्दों से वास्तव में विविध राष्ट्रों के सम्पर्क सहयोग, क्रिया-प्रतिक्रिया का बोध होता है। यह शब्द अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी और निजी दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाओं की विस्तृत विविधताओं की ओर संकेत करते हैं। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शब्दावली मुख्यतः राज्यों के राजनीतिक संबंधों तक सीमित है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध से इस प्रकार से हम देखते हैं व्यापक सम्बन्धों को बोध होता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से एक विशेष प्रकार का।

जान बर्टन का कहना है कि विश्व राजनीति के संबंध में हम जिन-जिन बातों का अध्ययन करते हैं उनके लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सही शब्दावली नहीं है। बर्टन के अनुसार यह शब्दावली केवल राज्यों के राजनीतिक सम्बन्धों को बताती है। इस लेखक का यह विश्वास है कि ऐसे अनेक गैर सरकारी सम्बन्ध और ऐसी बहुत सी गैर सरकारी संस्थायें होती हैं जिनके विश्वव्यापी महत्व को

नकारा नहीं जा सकता। बर्टन का यह कहना ठीक ही है कि संसार के लोगों की विभिन्न समस्याओं की गहन जानकारी के लिये विभिन्न देशों के लोगों के सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार के संबंधों का अध्ययन आवश्यक है। पर बर्टन के इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और विश्व समाज के सूचक हैं।

इस सम्बन्ध में दो प्रमुख कठिनाइयां हैं-

1- विश्व समाज को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के पर्याय के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि विश्व समाज शब्दावली से किसी विषय के अध्ययन के क्षेत्र का पता लग सकता है पर उसे स्वयं कोई अध्ययन का विषय नहीं माना जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की शब्दावली स्वयं में एक अध्ययन विषय की द्योतक है।

2- आज की बदलती हुई परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक बनाने की जरूरत है। तथा आवश्यकता इस बात की है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उन तमाम बातों को शामिल करने का है जो हमारे परम्परागत अध्ययन में अब तक छूटी रही है।

1.9 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निषिद्ध विधियों की संख्या, राष्ट्रीय राजनीति में निषिद्ध विधियों के मुकाबले बहुत कम है। उदाहरण के लिए हिंसा धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार पर राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में कानूनी रोक रहती है। पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कम से कम सिद्धान्त रूप में युद्ध की अनुमति उपलब्ध है। कुछ समय पहले तक युद्ध में किया जाने वाला ऐसा कोई काम निषिद्ध नहीं माना जाता था जिससे कि विजय प्राप्त होने की आशा हो। इसे युद्ध विधि में सैनिक आवश्यकता का सिद्धान्त कहते हैं। राष्ट्रीय कानून राष्ट्रीय राजनीति का आधार है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का। साधारण तथा राष्ट्रीय कानून अन्तर्राष्ट्रीय कानून से अधिक व्यापक है। इस प्रकार से राष्ट्रीय राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की अपेक्षा अधिक व्यवस्था तथा नियमितता पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजीनीति में प्रमुख उद्देश्य यह रहता है कि इसमें भाग लेने वाले समूहों का अस्तित्व बना रहे। प्रभुता सम्पन्न राज्य का अस्तित्व बनाये रखना अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख ध्येय है। किन्तु राष्ट्रीय राजनीति में किसी संप्रभुता सम्पन्न राज्य के अस्तित्व को कोई प्रत्यक्ष खतरा नहीं होता। अधिक से अधिक किसी ऐसे समूह के अस्तित्व को खतरा हो सकता है जिसके हाथों में किसी विशेष समय पर सत्ता की बागडोर हो।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संचालन व्यवस्था राष्ट्रीय राजनीति की संचालन व्यवस्था से भिन्न है। राष्ट्रीय राजनीति को एक ऐसी शासन व्यवस्था के रूप् में देखा जाता है जिसमें शान्तिपूर्ण कानून निर्माण और प्रशासन होता हो, समय समय पर चुनाव होते हों और राज्य की सरकार में किसी

न किसी प्रकार का स्थायित्व हो। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को विशेष रूप से युद्ध और युद्ध के खतरे की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु इन अन्तरों के बावजूद भी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कुछ समानता भी है। दोनों ही क्षेत्रों में शक्ति प्राप्त करने के लिये प्रयत्न किये जाते हैं। देशों का आन्तरिक शक्ति संघर्ष कभी कभी गृह युद्ध को जन्म देता है। गृह युद्ध का संबंध राष्ट्रीय राजनीति से होता है औरे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध का संबंध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से होता है।

क्विंसी राइट का मत है कि प्रभुता संपन्न राज्यों के बीच की राजनीति को एक संकीर्ण अर्थ में ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहा जा सकता है। राइट का यह भी मत है कि राष्ट्रीय प्रभुसत्ता समाप्त हो जाने पर ही हम सच्चे अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की बात सोच सकते हैं परन्तु 1945 से आज तक की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से स्पष्ट है कि संसार से राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को लोप हुये बिना भी ऐसे समूह बन सकते हैं। उदाहरण के लिये सोवियत गुट, तथा एशियाई अफ्रीकी गुट।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को कुछ लोगों ने विश्व राजनीति की भी संज्ञा प्रदान की है। परन्तु विश्व राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक नहीं समझाना चाहिए। सामान्य तथा विशेष दोनों ही अर्थों में क्षेत्रों में अंतर है। विश्व राज्य के अभ्युयदय के बाद ही विश्व राजनीति की कल्पना की जा सकती है। विश्व राज्य की स्थापना के बाद ही उसमें उस तरह की संस्थायें भी होंगी जैसी राष्ट्रीय राजनीति में होती है। 1945 तक केवल दो एक विश्व संस्थाओं का ही अस्तित्व था, उसके बाद बहुत सारी विश्व संस्थाओं का जन्म हो गया है और भविष्य में ऐसी बहुत सी संस्थाओं का बन जाने की सम्भावनायें है। संयुक्त राष्ट्र संघ का तथा दूसरे विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एक प्रकार की विश्व संस्थायें हैं। आजकल घरेलू राजनीति का दायरा पहले से बहुत विस्तृत हो गया है। आज बहुत सी अधि-राष्ट्रीय संस्थाओं का जन्म हो चुका है जैसे नाटो, अमेरिकी राज्यों का संगठन, अरब लीग, सोवियत गुट, ब्रिटिश राष्ट्र मंडल और पश्चिमी योरप के राज्यों की अनेक संस्थायें, इस प्रकार की अनेक अधिराष्ट्रीय संस्थाओं ने महत्वपूर्ण राष्ट्र समूहों का रूप् ले लिया है और वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रक्रिया में सक्रिय भाग ले रही हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति द्वारा घरेलू राजनीति के क्षेत्र का विस्तार किया जा रहा है। इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विश्व राजनीति में जो अन्तर है वह समझ लेना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वर्तमान काल की घटना है और विश्व राजनीति भविष्य की।

1.Politics Among Nations का प्रकाशन किस सन में किया गया ?
2.Politics Among Nations के लेखक कौन है ?
3.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के यथार्थवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया ?
4.हैन्स मार्गेन्थो :राष्ट्रोंके मध्य शक्ति के लिये संघर्ष, तथा उसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहलाता है। सत्यअसत्य/
5.फेलिक्स ग्रास अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वास्तव में :राष्ट्रोंकी विदेश नीति का अध्ययन ही है।

अस/सत्यत्य

6.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ पहले यूरोप की राजनीति से ही लिया जाता था |सत्य असत्य/

1.10 सारांश

मूल रूप से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन है। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में यह हर राष्ट्र की मजबूरी है कि वह अन्य राष्ट्रों के सम्पर्क में आये। इसलिये प्रत्येक राष्ट्रीय कर्ता अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भूमिका निर्वाह के दौरान राष्ट्र का एक ही लक्ष्य होता है। पहले से पूरे हो रहे राष्ट्रीय हित में वृद्धि करना अथवा कम से कम उन्हें यथावत बरकरार रखना। अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के निमित राष्ट्र बलकारी उपाय करने के लिए स्वतंत्र है। लेकिन राष्ट्र हित की सुरक्षा या उसमें अभिवृद्धि करने के लिए क्षमता चाहिए। यही क्षमता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शब्दावली में शक्ति कहलाती है। यह दूसरे को, उसकी इच्छा के विरूद्ध अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने हेतु बाध्य कर देने की क्षमता है। दूसरे शब्दों में शक्ति वह माध्यम है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हित में अभिवृद्धि का प्रयास करते हैं। इस रूप में राष्ट्रीय हित और शक्ति में अटूट सम्बन्ध है। एक लक्ष्य है तो दूसरा माध्यम। विदेश नीति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अभीष्ट राष्ट्रीय हित और उपलब्ध शक्ति के मध्य समानुपातिक सम्बन्ध हो। मार्गेन्थाऊ ने लिखा भी है कि 'शक्ति के संदर्भ में राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्रों द्वारा शक्ति अर्जित करने की प्रक्रिया का अध्ययन है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की अपेक्षा एक संकुचित अवधारणा है क्योंकि इसके अन्तर्गत राष्ट्रों के मात्र राजनीतिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। जबकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अन्तर्गत राष्ट्रों के सभी प्रकार के सम्बन्धों - आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक का अध्ययन अभीष्ट होता है। चाहे तो हम ऐसे भी कह सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक बड़ा वृत्त है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति उसके भीतर विद्यमान एक छोटा केन्द्रीय वृत्त है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्रमशः लोकतंत्रीकरण होता गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में स्वतंत्र कर्ताओं (राज्यों) की संख्या निरंतर बढ़ती गई है। इससे अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मात्र यूरोपीय राजनीति न रह कर सही अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय हो गयी।

परमाणु अस्त्रों के प्रसार ने भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को क्रमशः प्रभावित किया है। इन्होंने युद्ध के स्वरूप को ज्यादा तकनीकी और भयावह बना दिया है। लेकिन इससे शान्ति की संभावनाएं भी प्रबल हुई हैं। क्योंकि राष्ट्र अपने अस्तित्व के खतरे में डाल कर युद्ध के लिये नहीं तैयार होते।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र उन सभी विषयों तक प्रसारित है जो राष्ट्रों के मध्य सम्बन्ध से किसी भी रूप और किसी भी मात्रा में सम्बन्धित हैं इसमें उस पूरे परिवेश का अध्ययन आ जाता है। जिससे राष्ट्र अपनी अन्तः क्रिया करते हैं इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था, राष्ट्रों की शक्ति संरचना, राष्ट्रों की विदेश नीतियों आदि का अध्ययन अभीष्ट होता है।

1.11 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - राष्ट्रों के मध्य राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध- इसमें काफी व्यापकता पाई जाती है। उसके अन्तर्गत राष्ट्रों के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कानूनी राजनीतिक खोज एवं अन्वेषण सम्बन्धी, और इसी प्रकार के सभी सम्बन्ध आ जाते हैं।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1947, 2. हैन्स मार्गेन्थो 3. हैन्स मार्गेन्थो ,4. सत्य ,5. सत्य, 6. सत्य

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Palmer and Perkins : International Relations

2. Coloumbis & Wolfe : International Relations – Power and Justice.

3. Prakash Chandra : International Policies

4. Mahendra Kumar : Theoretical Aspects of International Relations.

1.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.मॉरगेन्थाऊ, हैन्स (1960), पॉलिटिक्स एमंग नेशन, मैकमिलन-हिल ह्यमेनिटीज।

2.कुमार, महेन्द्र (2013), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य, शिवलाल अग्रवाल पब्लिकेशनस एण्ड कॉरपोरेशन।

3.फाड़िया, बी.एल. (2008) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

4.खन्ना, बी.एन. (2003) अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.

1.15 निबंधात्मक प्रश्न

1.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ समझाइये और इसके स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

2.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में क्या अंतर है? अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र की विवेचना कीजिये।

3.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप और क्षेत्र की चर्चा कीजिये।

इकाई-2 : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के उपागम- शास्त्रीय एवमं आधुनिक(यथार्थवादी व नवयथार्थवादी, आदर्शवादी)

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के उपागम

2.3.1 यथार्थवाद

2.3.1.1 मार्गेन्थाऊ का यथार्थवाद

2.3.1.2 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद के प्रमुख सिद्धांत

2.3.1.3 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की समालोचना

2.3.1.4 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवादी सिद्धान्त का महत्व

2.4 नव यथार्थवाद

2.5 आदर्शवाद

2.6 यथार्थवाद बनाम आदर्शवाद

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

जार्ज सिम्पसन के अनुसार ''उपागम का आशय उस मापदण्ड से है जिसका प्रयोग अनुसंधान के दौरान समस्या और आंकड़े के चयन के लिये किया जाता है। इसका सिद्धान्त से नजदीकी सम्बन्ध है। प्रत्येक विषय के अनेक उपागम होते हैं। या हो सकते हैं। शोधकर्ता सिद्धान्त निर्माण के लिए इन्हीं उपागमों का प्रयोग करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में भी यही सही है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के अनेक उपागम विकसित हो चुके हैं। बर्टन सैपिन के अनुसार अब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के कुल 27 उपागम विकसित किये जा चुके हैं जबकि क्विन्सी राइट के अनुसार कुल उपागम 23 और पामर परकिन्स के अनुसार 7 हैं। इसके पूर्व के समयकाल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक और संस्थात्मक उपागमों का प्रयोग किया जाता था।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आदर्शवादी और यथार्थवादी उपागम पूर्ण उपागम माने जाते हैं क्योंकि वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्याख्या उसकी समग्रता में करते हैं। जबकि दूसरे उपागम यथा निर्णय उपागम, खेल उपागम, सौदेबाजी उपागम आदि आंशिक उपागम माने जाते हैं।

आदर्शवादी उपागम 1920 और 1930 के दशक में विशेष चर्चित रहा। यह उपागम मनुष्य को एक विवेकशील और स्वाभाविक रूप से एक सामाजिक प्राणी मानता है। यह उपागम बल, संघर्ष और युद्ध का निषेध करता है। इसकी यह मान्यता है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को मजबूत करके एक शान्तिपूर्ण विश्व की स्थापना की जा सकती है।

इसके विपरीत यथार्थवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को 'शक्ति के लिये संघर्ष' के रूप में परिभाषित किया। इस दृष्टिकोण में मनुष्य को स्वाभाव से स्वार्थी माना जाता है। राष्ट्रहित में अभिवृद्धि राष्ट्र का धर्म है, इसकी प्राप्ति के लिये शक्ति का अधिकतम संचयन राष्ट्र की आवश्यकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के समयकाल में वैज्ञानिकता के प्रभाव के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिये अनेक आधुनिक उपागम विकसित हुए। इन्हें सम्मिलित रूप से वैज्ञानिक या आधुनिक या व्यावहारवादी उपागम कहा जाता है। व्यवस्था उपागम निर्णय निर्माण उपागम, खेल उपागम तथा सौदेबाजी उपागम मुख्य रूप से इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के विभिन्न

उपागमों और उनके संभावित लाभों और हानियों से अवगत कराना है ।

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के विभिन्न उपागमों का विवेचन कर सकेंगे।
- विभिन्न उपागमों की दुर्बलताओं से अवगत हो सकेंगे।
- एक समन्वित उपागम से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन कर सकेंगे।

2.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में यथार्थवादी तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण परस्पर विरोधी हैं । जार्ज कैनन तथा मार्गेन्थाऊ यथार्थवादी दृष्टिकोण के प्रवर्तक हैं। वालकिन्स, लासवेल तथा डेविड ईस्टन ने भी यथार्थवादी दृष्टिकोण का ही समर्थन किया है। वुडरो विल्सन तथा बर्टरैण्ड रसेल ने आदर्शवादी दृष्टिकोण का प्रतिपालन किया है।

2.3.1 यथार्थवाद

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यथार्थवाद अनुमान और तर्क पर आधारित है। यह दृष्टिकोण सुरक्षा तथा शक्ति तत्वों पर विशेष बल देता है। इस प्रकार के विचार का आधार यह है कि व्यक्ति में ऐसा विश्वास होता है कि दूसरे लोग उसको नष्ट करने के चक्कर में रहते हैं। अतः अपनी सुरक्षा के लिये उसे दूसरों को मार डालने के लिये सजग तथा तत्पर रहना चाहिए। यथार्थवादी दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि विश्व के राष्ट्रों के बीच किसी न किसी रूप में संघर्ष तथा वैमनस्य बना रहता है, इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय समाज में शक्ति तथा प्रभाव की होड़ हमेशा बनी रहती है। कूटनीति तथा राजनय का प्रमुख कार्य यह है कि शक्ति प्रतिस्पर्धा पर किसी न किसी रूप में अंकुश लगाया जाय । शक्ति स्पर्धा पर लगाये जाने वाले अंकुश एक प्रकार का नया शक्ति संतुलन स्थापित करते हैं। यथार्थवाद शक्ति संघर्ष के स्थायित्व को स्वीकार करता है। इसका विश्वास है कि यह संसार परस्पर विरोधी हितों, और स्वार्थों का रंगमंच है जो आपस में टकराते रहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न विरोधी स्वार्थों के बीच संतुलन स्थापित किया जाय, तथा संघर्ष को टालने का प्रयत्न किया जाय।

जार्ज केनन तथा हैन्स मार्गेन्थाऊ दोनों का ही यह दृढ़ विश्वास है कि किसी भी बुद्धिमत्तापूर्ण नीति का आधार राष्ट्रीय हित ही होना चाहिए। परन्तु जहाँ तक राष्ट्रीय हित, तथा नैतिक सिद्धान्तों के बीच सम्बन्ध की प्रवृत्ति का प्रश्न है, दोनो ही विचारकों के मत भिन्न हैं। जार्ज एफ. केनन के अनुसार हम केवल अपने ही हितों को जान और समझ सकते हैं। तथा कोई भी समाज दूसरों की घरेलू समस्याओं और आवश्यकताओं का निर्णायक नहीं हो सकता। अतः यह ठीक ही है कि एक ओर तो हम अपनी राष्ट्रीय हितों की आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी विदेश नीति तथा वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करें, तथा दूसरी ओर उन नैतिक तथा आदर्श सिद्धान्तों के अनुसरण की भी कोशिश करें जो हमारी सभ्यता में अन्तर्निहित हैं। पर इस प्रकार के नैतिक सिद्धान्त केवल हमारे अपने लिये ही वैध

तथा मान्य हो सकते हैं, दूसरों के लिये नहीं। अतः हमको इन सिद्धान्तों को दूसरों पर थोपने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

जार्ज केनन के इन विचारों के विपरीत हैन्स मार्गेन्थाऊ ने राष्ट्रीय हित ही को सर्वोच्चता प्रदान की है तथा यह विचार व्यक्त किया है कि राष्ट्रीय हित नैतिकता के सिद्धान्तों से ऊपर है। मार्गेन्थाऊ के यथार्थवादी सिद्धान्त का विवेचन हम अलग से करेगे, यहाँ पर केवल इतना कहना ही काफी है कि यथार्थवादियों में इस बात पर मत की एकता नहीं है कि राष्ट्रीय हित को किस सीमा तक प्रमुखता दी जाय। इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि विदेश नीति और वैदेशिक सम्बन्धों का आधार राष्ट्रीय हित ही होना चाहिए न कि नैतिक सिद्धान्त।

2.3.1.1 मार्गेन्थाऊ का यथार्थवाद

मार्गेन्थाऊ का यथार्थवादी सिद्धान्त के प्रमुख प्रवक्ता हैं और उन्होंने यथार्थवाद को चिन्तर का एक पृथक तथा स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया । वैसे तो यथार्थवाद पर अनेक लेखकों ने लिखा है जैसे कि जार्ज एफ. केनान परन्तु मार्गेन्थाऊ पहला विद्वान है जिसने एक यथार्थवादी प्रतिमान विकसित कियाहै इस क्षेत्र में मार्गेन्थाऊ के योगदान के कारण यथार्थवाद तथा मार्गेन्थाऊवाद के विद्वान पर्यायवाची मानने लगे हैं।

2.3.1.2 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की प्रमुख सिद्धांत

प्रथम सिद्धांत

मार्गेन्थाऊ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मूल आधार राष्ट्र हित है जिसे केवल शक्ति के संघर्ष में देखा जा सकता है। यह दृष्टिकोण उन इकाइयों (अर्थात राज्यों) पर विशेष ध्यान देता है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख कार्यकर्ता हैं । इस दृष्टिकोण को यथार्थवादी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें राष्ट्रहित की महत्ता पर विशेष बल दिया जाता है। यह दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि शक्ति के द्वारा ही राष्ट्रीय हितों को बढ़ायाजा सकता है। जिस सीमा तक इसमें शक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है उस सीमा तक इसे शक्तिवादी दृष्टिकोण भी कहा जा सकता है। मार्गेन्थाऊ ने स्पष्ट किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अन्य सभी राजनीतियो की तरह शक्ति के लिए संघर्ष है और यदि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अंतिम उद्देश्य कुछ भी हो इसका तात्कालिक लक्ष्य शक्ति प्राप्त करना ही होता है शक्ति के महत्व पर जोर डालते हुए मागेन्थो कहता है कि शक्ति का अर्थ है ''मनुष्यों का अन्य मनुष्यों के मष्तिस्क, और क्रिया कलापों पर नियंत्रण'' । मागेन्थों से पहले भी तथा बाद में भी कई लेखकों ने शक्ति के इस दृष्टिकोण पर बल दिया है। 19वीं शताब्दी में ट्रीट्स्के तथा नीटशे ने शक्ति के विचार तथा शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा का अनुमोदन किया। प्रथम विश्व युद्ध से पहले एरिख काफमैन ने लिखा कि शक्ति के विकास संवर्द्धन और प्रदर्शन में ही राज्य का सार

है । फ्रेडरिक वाटकिन्स, हेराल्ड लासवेल, डेविड ईस्टन आदि विद्वानों ने राजनीति के अध्ययन में यथार्थवादी विचारधारा के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया है । इन सभी ने शक्ति राजनीति पर बल दिया है । डेविड ईस्टन का कहना है कि राजनीति विज्ञान शक्ति के प्रयोग, और वितरण से प्रभावित होता है। मार्गेन्थाऊ की तरह ही ई. एच. कर, क्विंसी राइट, जार्ज सेवारजेनबर्गर, मार्टिन राइट, आदि आधुनिक विचारक भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में राजनीति विज्ञान की शक्ति सम्बन्धी अवधारणा के विस्तार के समर्थक हैं। पर इन सब से कहीं अधिक कार्य मार्गेन्थाऊ ने किया है। उसने शक्ति के दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों अथवा राजनीति पर सबसे अधिक व्यवस्थित कार्य किया है। अन्य विद्वानों ने मार्गेन्थाऊ द्वारा स्थापित परम्परा को ही आगे बढ़ाया है । पालिटिक्स अमंग नेशन्स में मार्गेन्थाऊ कहता है कि उनका सिद्धान्त यथार्थवादी इसलिये है क्योंकि यह मानव स्वभाव को उसके वास्तविक अथवा यथार्थ रूप् में देखता है।

मार्गेन्थाऊ ने अपने राजनीतिक दर्शन में छः मेल तत्व बताये हैं इन्हीं छः तत्वों में उनके यथार्थवादी सिद्धान्त का सार अर्न्तनिहित है। पहला तत्व यह है कि राजनीति पर प्रभाव डालने वाले सभी नियमों की जड़ मानव प्रवृत्ति में होती है। मनुष्य जिन नियमों के अनुसार संसार में क्रिया कलाप करता है वे सार्वभौम हैं और यह नियम हमारी नैतिक मान्यताओं से हमेशा अछूते रहते हैं समाज को सुधारने के लिये यह जरूरी है कि पहले उन निमों को समझ लिया जाए जो समाज के जीवन धारा हैं । मार्गेन्थाऊ का कहना है कि विदेश नीति का मूल्यांकन राजनीतिक गतिविधियों, और उनके सम्भावित परिणामों की परीक्षा करने के बाद ही हो सकता है। किसी देश की विदेश नीति को समझने के लिए यह जरूरी है कि पहले हम उस देश के राजनीतिक नतेताओं के विभिन्न कार्यों पर दृष्टि डालें, और फिर तर्क के आधार पर देखें कि उन राजनेताओं के उद्देश्य क्या रहे होंगे ।

दूसरा सिद्धांत

मार्गेन्थाऊ के राजनीतिक दर्शन का **दूसरा प्रधान** तथ्य राष्ट्रहित की प्रमुखता है। मार्गेन्थाऊ ने राष्ट्रहित को शक्ति की संज्ञा दी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का यथर्थवादी सिद्धान्त इस बात की परवाह नहीं करता कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्या होना चाहिए, और क्या हो रहा है। अथवा उसमें क्या नैतिक है और क्या अनैतिक । इसका संबंध तो केवल उन सम्भावनाओं से है जो किसी विशेष सतह के काल की किन्हीं क्षेत्र परिस्थितियों के अन्तर्गत आती हैं। अतः विदेश नीति का सम्बन्ध उसकी सफलता की राजनीतिक आवश्यकताओं से होना चाहिए। इस प्रकार से हम देखते हैं कि राजनीतिक यथार्थवाद की दूसरी प्रमुख मान्यता है शक्ति के रूप में परिमापित हित की अवधारणा सरल शब्दों में इसका अर्थ है राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिये शक्ति का प्रयोग । राष्ट्रीय हित का केन्द्र बिन्दु सुरक्षा है। और सुरक्षा के लिये शक्ति अर्जित की जाती है। दूसरे शब्दों में हित की कल्पना शक्ति विहीन सन्दर्भ में नहीं की जा सकती । राजनीति का मुख्य आधार हित और उनकी सुरक्षा है - यही कारण है कि राजनीति को हम शक्ति से अलग रखकर नहीं समझ सकते । तात्पर्य यह है कि शक्ति

राजनीति का केन्द्र बिन्दु है । मार्गेन्थाऊकी मान्यता है कि विदेश नीति के निर्माता शक्ति को आधार मानकर ही नीतियों की रचना करते हैं, और इतिहास की इस बात की पुष्टि करता है।

मार्गेन्थाऊ का कहना है कि प्रत्येक राजनीतिज्ञ ''शक्ति के रूप में परिमार्जित हित की दिशा में ही सोचता है। और कार्य करता है। राजनीतिज्ञ का उद्देश्य अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करना होता है। शक्ति के रूप में परिमाणित हित के आधार पर ही हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सैद्धान्तिक रूप प्रदान कर सकते हैं। यही एक ऐसा विचार है जिसके आधार पर राष्ट्रों की विदेश नीतियों में निरंतरता का आभास मिलता है यदि इनका निर्माण करने वाले समय समय पर बदलते रहे हों, और उनके बौद्धिक स्तर, उद्देश्य, नैतिक गुण आदि भिन्न भिन्न रहे हों। इस दृष्टि से यथार्थवादी सिद्धान्त अपने आप को दो भ्रान्तियों से बचाना चाहता है 1- मनतवयों से संबंधित भ्रान्ति से 2- वैचारिक वरीयताओं से संबंधित भ्रान्तियों से । यदि हम राजनीतिज्ञों के मनतवयों को देखकर ही किसी देश की विदेश नीति को समझने का प्रयास करेंगे तो असफल होंगे तथा धोखा खा जाएंगे। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि राजनीतिज्ञों के वास्तविक प्रयोजनों के आधार पर हम यह फैसला नहीं कर सकते कि उनकी विदेश नीतियां नैतिक दृष्टि से सराहनीय, तथा राजनीतिक दृष्टि से सफल रहेंगी । विश्व शान्ति और भ्रातृत्व की भावना का उल्लेख लेकर चलने वाली नेहरूवादी विदेश नीति की आलोचना इस आधार पर की गई । वह गैर यथार्थवादी थी। चेम्बरलेन की तुष्टीकरण की विदेश नीति का उद्देश्य संसार में शान्ति स्थापित करना था, किन्तु वही नीति द्वितीय विश्व युद्ध काएक प्रमुख कारण बनी । दूसरी ओर विन्सटन चर्चिल की विदेश नीति का प्रयोजन संकीर्ण स्वार्थ था लेकिन उसके परिणाम राजनीतिक दृष्टि से अधिक उच्चतर माने गए। कहने का तात्पर्य यह है कि यथार्थवादी दृष्टिकोण किसी कार्य का नैतिक तथा राजनीतिक स्तर उसके प्रयाजनों से नहीं बल्कि उसके परिणामों से देखता है । आज के अन्तर्राष्ट्रीय जगत में यह एक सामान्य सी परम्परा बन गई है कि प्रत्येक देश अपनी विदेश नीति को सैद्धान्तिक आवरण पहनाकर आकर्षक बना देता हैं ताकि युवा जनमत उसकी ओर खिंचता चला जाए।

तीसरा सिद्धान्त -

मार्गेन्थाऊ के अनुसार राष्ट्रहित का कोई निश्चित या निर्धारित अर्थ नहीं है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मूल तत्व शाश्वत है। परन्तु परिस्थितियों में कुछ मामूली परिवर्तन होते रहते हैं । अतः एक राजनेता के लिये यह आवश्यक है कि वह मूल तत्वों को बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार ढालने का लगातार प्रयत्न करता रहे । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शक्ति सिद्धान्त को लागू करते समय उसमें कुछ परिवर्तन करना कभी कभी जरूरी हो जाता है। शक्ति सिद्धान्त लागू करते समय हम शक्ति की सीमाओं को भी ध्यान में रखें ।

मार्गेन्थाऊके अनुसार हित दो प्रकार के होते हैं। 1- अन्तर्राष्ट्रीय तथा परिवर्तनशील। राजनीति का गूढ़ तत्व सुरक्षा में निहित है जिसके बगैर किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र का अस्तित्व नहीं रहा सकता। सुरक्षा किसी भी राष्ट्र का न्यूनतम कार्य है। यह सुरक्षा ही कभी न बदलने वाला हित है। यथार्थवाद जैसा कि हमने देखा इस तथ्य से इंकार नहीं करता कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आते हैं। वास्तव में यथार्थवादी सिद्धान्त तथा परिवर्तन में कोई विरोधाभास नहीं है। राजनीतिक यथार्थवाद केवल इस बात पर बल देता है कि परिवर्तन लाने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम राजनीति के गूढत्र तत्व को ही तिलांजलि दे दें।

चौथा सिद्धान्त -

राजनीतिक यथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि राजनीतिक कार्यों का नैतिक महत्व भी है। साथ ही साथ यह बात भी मानकर चलता है कि नैतिक मापदंड, तथा राजनीतिक कार्यो के बीच तनाव की स्थिति रहती है, परन्तु हमको यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि सम्पूर्ण नैतिक सिद्धान्त राज्य के कार्यों पर लागू नहीं किए जा सकते। उनका आकलन समय की ठोस कसौटी पर किया जाना चाहिए, और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नैतिक सिद्धान्तों का चयन किया जाना चाहिये। राजनीतिक यथार्थवाद की यह मान्यता है कि राष्ट्रों को नैतिक सिद्धान्तों का पालन विवेक और सम्भावित परिणामों के आधार पर ही करना चाहिए। विवेक के बगैर राजनीतिक नैतिकता के कोई माने नहीं होते। एक व्यक्ति तो नैतिक सिद्धान्तों के लिए सब कुछ छोड़ सकता है, पर यह बात राज्य पर लागू नहीं होती। कोई भी देश नैतिकता की दुहाई देकर अपनी सुरक्षा खतरे में नहीं डाल सकता। इस प्रकार से हम देखते हैं कि राजनीतिक यथार्थवाद नैतिकता के प्रति उदासीन नहीं है, पर वह यह मानता है कि काल की परिस्थितियों के अनुसार नैतिक सिद्धान्तों में आवश्यक संशोधन कर लेने चाहिए। साथ ही साथ यथार्थवाद विवेक को राजनीति में उच्चतम मूल्य मानता है।

पॉंचवां सिद्धान्त -

राजनीतिकि यथार्थवाद का पांचवां सिद्धान्त यह है कि राष्ट्र के नैतिक मूल्यों तथा सार्वभौम नैतिक मूल्यों कोएक नहीं समझना चाहिए। यह दोनो एक दूसरे से पृथक हैं। किसी सार्वभौम नैतिक कानून का पालन किसी देश विदेश के लिये निश्चित रूप से लाभदायक नहीं है। यह भी संभव है कि उनके पालन से भयंकर परिणाम उत्पन्न हो जाएं। नैतिक सिद्धान्तों की रक्षा के लिऐ अपने देश के हितों को बलिदान करने वाला व्यक्ति राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमान नहीं समझा जाता। पर दूसरी ओर राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नैतिकता का सर्वथा परित्याग भी इतिहासकारों की आलोचना का विषय बनता है। यह दोनों भ्रान्तियां है। और इनसे बचने का उपाय यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने शक्ति के रूप् में परिभाषित राष्ट्रीय हित की दिशा में कदम उठाए।

मार्गेन्थाऊ अपने पांचवें सिद्धान्त के अन्तर्गत राजनीतिज्ञों को चेतावनी देता है कि वे राष्ट्रों के द्वारा दी जाने वाली नैतिकता की दुहाई से अनावश्यक रूप से प्रभावित न हों। प्रत्येक राष्ट्र अपने कार्यों के समर्थन में नैतिकता की दुहाई अवश्य देता है। परन्तु वास्तव में वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्य करता है और उसके उद्देश्य अपने हितों की सुरक्षा होती है। इतिहास साक्षी है कि नैतिकता की दुहाई देते हुये कई राज्यों ने दूसरे राज्यों को नष्ट कर दिया। व्हाइटमैन बर्डेन के सिद्धान्त के आधार पर एशिया तथा अफ्रीका के निवासियों को सिविलाइज बनाने की आड़ में साम्राज्यवाद का विस्तार किया गया।

राष्ट्र की सहायता करने तथा उसके विकास में मदद देने में भी एक राष्ट्र अपने ही हितों की रक्षा करता है। उदाहरण के लिए यू.एस.ए. यदि दूसरे राष्ट्रों को आर्थिक या नैतिक सहायता देता है तो ऐसा करने से वह अपने ही हितों की रक्षा करता है - Containment of communism साम्यवाद के बढ़ावा को रोकना। यू.एस.ए. 1953 के बाद से लगभग बराबर पाकिस्तान को सैनिक मदद दे रहा है और बदले में वहॉ पर उसके सैनिक सुविधायें प्राप्त की तथा साथ ही साथ उसके हथियारों की जो कि आये दिन बेकार होते रहते हैं उनकी भी खपत होती रहती है। भारत के द्वारा नेपाल व भूटान को भारी आर्थिक सहायता देने के पीछे भी यही उद्देश्य है - इन देशों को चीन के पूर्ण प्रभाव में जाने से रोकना।

मार्गेन्थाऊका कहना है कि यदि प्रत्येक राष्ट्र एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिये प्रयत्नशील हैं तो यह संभव है कि सभी राष्ट्र इस आधार पर संतुलित संबंध स्थापित कर लें। और यदि ऐसा हो जाता है तो यह विश्व शांति का प्रबल आधार बन जाएगा। मार्गेन्थाऊ कहता है कि राष्ट्रों के द्वारा पारस्परिक सूझ- बूझ के आधार पर संतुलन स्थापित कर लेना आज के युग की सबसे बड़ी नैतिकता है और यह नैतिकता वांछनीय भी है।

छठा सिद्धान्त -

यथार्थवाद के अपने इस छठे सिद्धान्त में मार्गेन्थाऊ ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र विषय मानने की बात कही है।वह राजनीति के क्षेत्र की स्वायत्तता में विश्वास करता है। यथार्थवाद गैर राजनीतिक विषयों से अनभिज्ञ नहीं है। पर वह उन्हें राजनीतिक नियमों के अधीन मानता है। यथार्थवाद उन सभी विचारधाराओं का विरोध करता है जो राजनीतिक विषयों पर गैर राजनीतिक नियमों को जबरदस्ती थोपने का प्रयत्न करती हैं। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि बौद्धिक रूप से राजनीतिक क्षेत्र उसी प्रकार से एक स्वतंत्र क्षेत्र हैं जिस प्रकार अर्थशास्त्र अथवा समाजशास्त्र हैं। यथार्थवाद मानव प्रवृत्ति के बहुल स्वरुपपर आधारित हैं। एक यथार्थवादी व्यक्ति, आर्थिक मानव, राजनीतिक मानव, नैतिक मानव, धार्मिक मानव, आदि का मिला जुला स्वरूप हैं। किन्तु यदि हम इनमें से किसी एक स्वरूप का गहन अध्ययन करना चाहते हैं तो उसको अन्य स्वरूपों से अलग

रखकर ही ऐसा कर सकते हैं तभी यह अध्ययन सुव्यवस्थित होगा। राजनीतिक अध्ययन में मानव प्रवृत्ति के अन्य स्वरूपों का स्थान गौड़ है और यही कारण है कि राजनीतिक यथार्थवाद में राजनीति की स्वतंत्रता में बहुत अधिक बल दिया जाता है। राजनीति के विभिन्न स्वरूपों में अ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति भी एक है। अतः यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सुव्यवस्थित, तथा गहन अध्ययन करना चाहते हैं तो उसे अन्य राजनीतिक प्रभावों जैसे आन्तरिक राजनीति आदि से यथासंभव स्वतंत्र रखना होगा। स्पष्ट है कि अर्न्तराज्य का भी अपना स्वतंत्र स्वरूप है। यथार्थवादी दृष्टिकोण की तीन मूलभूत मान्यतायें हैं। पहली यह कि प्रत्येक देश के राजनेता हमेशा अपने राष्ट्र के हित की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते रहते हैं। दूसरी मान्यता यह है प्रत्येक राष्ट्र का हित उसके भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विस्तार में ही निहित है। तीसरी धारणा यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी शक्ति और प्रभाव का उपयोग अपने हितों की रक्षा के लिये करता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक राज्य की विदेश नीति पूरी तरह से शक्ति पर निर्भर है। और यदि हम यह मानते हैं कि शक्ति भी एक प्रकार का प्रभाव है तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक राज्य की विदेश नीति प्रभाव पर आधारित है। इस प्रकार से शक्ति के दृष्टिकोण को प्रभाव का दृष्टिकोण भी कहा गया है। इस प्रकार से शक्ति,प्रभाव व यथार्थवादी दृष्टिकोण एक हैं।

मार्गेन्थाऊ का कहना है कि राजनीति का स्वरुपमानव प्रवृत्ति पर आधारित होता है इस प्रकार से विश्व मानव प्रवृत्ति का ही प्रतिबिम्ब है। मार्गेन्थाऊ के अनुसार विश्व एक ऐसा स्थल है जहॉ अच्छाई और बुराई, तर्क और भावना, जीवन और मृत्यु, स्वास्थ्य और रोग, तथा शान्ति और युद्ध के बीच में लगातार संघर्ष चला करता है। इस संघर्ष में हमारे विरोधियों की विजय होने की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। यह संसार विरोधी हितों, और उनके बीच होने वाले निरंतर संघर्ष का रणक्षेत्र है। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि जब कभी हम अपने भाई बन्धुओं को ध्यान में रखकर काम करते हैं तो हम निश्चित रूप् से कोई न कोई पाप करते है। अतः मार्गेन्थाऊ का विचार है कि संघर्ष और पाप का मूल श्रोत मानव प्रकृति के दो लक्षणों में पाया जाता है। यह दो लक्षण हैं स्वार्थपरता तथा प्रभुत्व की लालसा। जब हम कोई वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं तो उसको प्राप्त करने के मार्ग में बहुत सी बाधायें आती हैं क्योंकि दूसरे लोग भी वही वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं परिणाम यह होता है कि एक ही वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों में संघर्ष आरम्भ हो जाता है। और हमारी स्वार्थपरता हमें आपसी प्रतियोगिता की ओर ले जाती है।

परन्तु स्वार्थपरता की भी सीमायें होती है। मार्गेन्थाऊ कहता है कि स्वार्थपरता की मांगों को काफी हद तक पूरा भी किया जा सकता है। इसलिये मार्गेन्थाऊ कहता है कि मनुष्य का मनुष्य के प्रति जो युद्ध भाव है उसका कारण केवल स्वार्थपरक ही नहीं है पर प्रभुत्व की लालसा भी है जो कि मानव प्रकृति का दूसरा प्रमुख लक्षण है। मानव समाज के इन दो लक्षणों (स्वार्थपरता तथा प्रभुत्व की लालसा) में अन्तर है। स्वार्थपरता सीमित है जबकि प्रभुत्व की लालसा असीमित है। इस लालसा

को स्वार्थपरता की तरह न तो संतुष्ट किया जा सकता है और न ही इसे सीमा बद्ध किया जा सकता है। प्रभुत्व की लालसा के संबंध में मार्गेन्थाऊ के विचार हाब्स से मिलते जुलते हैं। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि मनुष्य की प्रभुत्व की लालसा तभी पूरी तरह से संतुष्ट होगी जब संसार का प्रत्येक अन्य मनुष्य उसके आधिपत्य में आ जायेगा। जबकि हाब्स ने कहा था कि अगर मनुष्य के पक्ष में हो तो वह यह चाहेगा कि सारीदुनियाँउससे डरे और उसकी आज्ञा का पालन करती रहे । मार्गेन्थाऊ का कहना है कि प्रभुत्व की लालसा ही हर प्रकार की राजनीति का सार है।

मार्गेन्थाऊ का यह भी कहना है कि शक्ति ही वह वस्तु है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरे मनुष्यों पर प्रभुत्व स्थापित करता है। साथ ही साथ वह यह भी कहता है कि जो लोग शक्ति का प्रयोग करते हैं, तथा जिन पर शक्ति का प्रयोग किया जाता है उनके बीच शक्ति से एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक संबंधत स्थापित हो जाता है शक्ति का तात्पर्य है राजनीतिक शक्ति अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति । शक्ति की इस परिभाषा के आधार पर मार्गेन्थाऊ ने शक्ति और हिंसा या बल प्रयोग में भी किया है। कम से कम सैद्धान्तिक स्तर पर शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के साधन भीहैं और साध्य भी है। साधन इसलिये है क्योंकि शक्ति से राष्ट्र हित की पूर्ति होती है और साध्य इसलिये कि शक्ति का आधिपत्य बना रहना राष्ट्रहित के सुगम सिद्धि के लिए आवश्यक है। मार्गेन्थाऊ कहता है कि किसी राज्य के हित न तो निश्चित होते हैं और न ही सीमित । वे हमेशा फेलते ही जाते हैं अतः राष्ट्रहित के फेलाव के साथ मार्गेन्थाऊ कहता है कि श्ज्ञक्ति का फेलाव भी अपेक्षित है।

मार्गेन्थाऊ के अनुसार शक्ति का सिद्धान्त राजनीति के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से लागू होता है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न नहीं थे। कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सामान्य राजनीति का एक विशिष्ट पहलू है। मार्गेन्थाऊ यह मानता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की परिस्थितियां घरेलू राजनीति की परिस्थितियों से भिन्न हैं । मार्गेन्थाऊ यह भी कहता है कि परिवर्तन तो अन्तर्राष्ट्रीय तथा घरेलू दोनों ही प्रकार की राजनीति में होते हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों में हिंसा का प्रयोग बहुत अधिक होता है। कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऐसी कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं है जो कि विभिन्न राष्ट्रों के शक्ति संघर्ष को नियंत्रित करने का प्रयास करने लगता है । अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का वही सिद्धान्त ठोस माना जा सकता है जिसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर को ध्यान में रखा गया है।

मार्गेन्थाऊ कहता है कि विभिन्न राज्यों की सहज प्रवृत्ति अधिक से अधिक क्षति अर्जित करने की होती है। शक्ति केवल दूसरों पर आधिपत्य या प्रमाण ही स्थापित नहीं करती बल्कि विभिन्न राज्यों की विदेशनीति की प्रवृत्ति भी निर्धारित करती है। राजनेताओं के प्रत्येक कार्य का प्रयोजन शक्ति बनाये रखना, उसे बढ़ाना या उसका प्रदर्शन करना है। मार्गेन्थाऊ का मत है कि जिन राज्यों की शक्ति सीमित है और किन्हीं मजबूरियों के कारण अपनी शक्ति का विस्तार नहीं कर सकते तो वे

अपनी शक्ति को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं । उनका मुख्य उद्देश्य केवल वर्तमान के हितों की रक्षा करना होता है। ऐसे राज्य यथास्थिति वाली नीति का अनुसरण करते है। इसके विपरीत ऐसे राज्य जिनके पास शक्ति की अधिकता है वह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास करते हैं ऐसे राज्यों की नीति परिवर्तनवादी होती है । इस प्रकार से मार्गेन्थाऊ कहता है कि विभिन्न राज्य दो श्रेणियों में बॉटे जा सकते हैं | जब कभी रिवीजनिस्ट राज्य की शिक्त विस्तार की लालसा अपनी चरम सीमा पर पहुच जाती है तो वह दूसरों का शोषण करने लगता है और उस राज्य की नीति साम्राज्यवादी हो जाती है। यथास्थितिवादी राज्य प्रयत्न करते हैं कि मौजूदा शक्ति संतुलन में कोई परिवर्तन नहो और इस संतुलन में जो उनकी स्थिति हैं वह बराबर बनी रहे। परन्तु परिवर्तनवादी राज्य मौजूदा शक्ति को उलटकर और अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं ।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि मार्गेन्थाऊशक्ति को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र मानता है। वह शक्ति को राष्ट्रहित का प्रतिबिम्ब समझता है, और यही कारण है कि प्रत्येक राज्य को अपने राष्ट्रहित का परिपोषण तथा संरक्षण करना चाहिए। किसी देश की विदेश नीति तभी सफल हो सकती है जबकि वह शक्ति अर्थात राष्ट्रहित पर आधारित हो। परन्तु राष्ट्रहित है क्या? इस प्रश्न पर हम लोग अलग से विचार करेंगे । यहॉ पर हम केवल मार्गेन्थाऊके विचारों को जान लें । मार्गेन्थाऊने राष्ट्रहित की कोई स्पष्ट परिभाषा न देते हुए केवल इतना कहा है कि राष्ट्रहित का अर्थ काफी व्यापक है, और उसका स्वरूप उन बहुत से सांस्कृतिक तत्वों पर निर्भर है जिनके अन्तर्गत किसी राज्य की विदेश नीति निर्धारित की जाती है । मार्गेन्थाऊके अनुसार राष्ट्रहित के दो प्रमुख पक्ष हैं 1- स्थिर, स्थायी अथवा आवश्यक 2- अस्थिर अथवा अस्थायी । स्थिर पक्ष वह है जो प्रत्येक देश के लिए समान रूप् से महत्वपूर्ण हैं अस्थिर पक्ष का स्वरूप देश की बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। राष्ट्रहित की न्यूनतम आवश्यकता राष्ट्र की अस्तित्व की रक्षा होती है। अस्तित्व रक्षा राष्ट्र हित का स्थिर प्क्ष होता है परन्तु अस्थायी प्क्ष का स्वरूप स्पष्ट रूप से पहचानना कठिन है । राष्ट्रहित के आवश्यक तत्व की निरन्तरता दो बातों से उत्पन्न होती है । 1- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में प्रत्येक राष्ट्र के अस्तित्व को हमेशा खतरा रहता है 2- अस्तित्वरक्षा के लिये शक्ति ही एकमात्र साधन है।

मार्गेन्थाऊ का कहना है कि राष्ट्रहित के अस्थिर पक्ष का सही रूप् पहचानना काफी कठिन है क्योंकि यह अक्सर कई प्रकार के बाहरी आवरणों के भीतर दब जाता है। इस सम्बन्ध में मार्गेन्थाऊ कुछ विशेष आवरणों का उल्लेख करता है। पहला आवरण किसी देश के उन अन्दरूनी गुटों के कारण होता है जो अपने निजी संकीर्ण हितों को राष्ट्रहित की संज्ञा देते हैं । राजकीय सत्ता प्राप्त करने पर यह गुट अपने निजी हतहों को ही राष्ट्र हित कहकर जनता के सामने पेश करते हैं । कभी कभी सत्ता से बाहर रह कर भी यह गुट देश की विदेश नीति को प्रभावित करते हैं। दूसरा आवरण विदेशी

हस्तक्षेप के कारण पैदा होता है। यह हस्तक्षेप प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। इस हस्तक्षेप का प्रभाव यह पड़ता है कि नीति निर्माता किसी अन्य देश के दबाव में आकर अपने देश का राष्ट्रीय हित निर्धारित करते हैं। कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई भावना के कारण भी राष्ट्रहित का सही स्वरूप छिप जाता है। इस भावना का ही परिणाम है कि आज कल विभिन्न देशों के अलग अलग राष्ट्रहित को सम्पूर्ण विश्व के हितों में मिला देने की आवाज उठने लगी है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि राष्ट्रहित का सही रूप तीन प्रकार के अवस्थाओं में छिप जाता है। पहला आवरण उपराष्ट्रीय है दूसरा अन्य राष्ट्रीय और तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय। मार्गेन्थाऊका कहना है कि राजनेताओं का यह पहला कर्तव्य है कि राष्ट्रहित को इन तीनों आवरणों के अवांछनीय प्रभाव से बचायें। इसके बाद उन्हें यह तय कर लेना चाहिए कि देश के विभिन्न लक्ष्यों में कौन से प्राथमिक हैं तथा कौन से गौड़। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी देश के पास अपने सभी लक्ष्यों की पूर्ति के लिये पर्याप्त साधन नहीं होते अतः उन्हें अपने उपलब्ध साधनों का प्रयोग विवेकपूर्वक इस प्रकार से करना चाहिए कि प्राथमिक हितों की अधिक पूर्ति हो सके। परन्तु यह तभीहो सकता है जबकि राजनेताओं को राष्ट्रहित के स्थिर एवं अस्थिर तत्वों के भेद का पूरा ज्ञान हो। इसलिए मार्गेन्थाऊराष्ट्रहित के दोनों तत्वों के बीच संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता पर जोर देता है।

राष्ट्रहित संबंधी अपने विचारों को मार्गेन्थाऊ अनैतिक नहीं मानता। उसका यह विश्वास है कि संसार में रहकर पाप और बुराई से बिलकुल बचे रहना संभव नहीं है अधिक से अधिक हम इस बात की कोशिश कर सकते हैं कि अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये ऐसा रास्ता अपनाएं जिमें पाप और बुराई कातत्व कम से कम हो। मार्गेन्थाऊ की यह धारणा है कि राजनीति में यह निश्चित कर पाना काफी कठिन है। कि कौन से कार्य पूरी तरह से नैतिक हैं और कौन से पूरी तरह से अनैतिक। इसके अर्थ यह नहीं हैं कि राजनीतिक कार्य का कोई नैतिक उद्देश्य नहीं होता। वास्तव में शक्ति के माध्यम से अपने मूल्यों को साकार करना हमारे राजनीतिक कार्यों का उद्देश्य है। अतः राष्ट्रहित कापालन करना नीति निर्धारकों का नैतिक धर्म है। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि जब तक संसार में के सिद्धान्त को बोलबाला है और जब तक विभिन्न देशो के पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करने के लिये किसी केन्द्रीय सत्ता की नहीं होती तब तक प्रत्येक राज्य को अपने अस्तित्व सत्ता के लिये अपने निजी प्रयासों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। अतः मार्गेन्थाऊ कहता है कि शक्ति के द्वारा राष्ट्रहित की पूर्ति के लिये प्रयत्न करना नैतिकता की सबसे बड़ी मांग है।

इस प्रकार से मार्गेन्थाऊ नैतिकता की अपनी अलग से परिभाषा दी है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रहित को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त है। मार्गेन्थाऊका कहना है कि राजनेताओं को अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं तथा सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्तों की अपेक्षा राष्ट्रहित की सुरक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

मार्गेन्थाऊ नैतिकता तथा अनैतिकता के बीच विवाद को बेकार मानता है। मार्गेन्थाऊ का नैतिकता संबंधी दृष्टिकोण यह है कि राष्ट्रहित की सुरक्षा करना राजनेताओं का सबसे बड़ा नैतिक धर्म है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि प्रत्येक देश इस धर्म को निर्वाहने काप्रयत्न करेगा तो विभिन्न देशों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना अवश्यम्भावी हैं और यदि इस संघर्ष पर किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं किया जाता है तो युद्ध कासंकट बना रहेगा। ऐसी स्थिति में मार्गेन्थाऊ विश्व शान्ति की लिये अब तक किये गये विभिन्न उपायों को जांच पड़ताल करता है। मार्गेन्थाऊ इन उपायों को तीन भागों में बॉटता है। 1- प्रतिबन्ध द्वारा शान्ति इसके अन्तर्गत निरस्त्रीकरण समूहिक सुरक्षा , शान्तिपूर्ण परिवर्तन, न्यायिक समझौते और अन्तर्राष्ट्रीय सरकार आते हैं। 2- दूसरा वर्ग परिवर्तन द्वारा शान्ति का हैं इसके अन्तर्गत विश्व समाज की स्थापना की जाती हैं। 3- तीसरा वर्ग परस्पर युद्ध द्वारा उपायों का है इस वर्ग के अन्तर्गत डिप्लोमेसी को रखता है।

मार्गेन्थाऊ ने इन सभी उपायों की व्यावहारिकता की आलोचनात्मक विवेचना की है। निःशस्त्रीकरणतभी उपयोगी हो सकता है जबकिदुनियाँके सभी देशों के बीच इस सम्बन्ध में कोई कारगर समझौता हो जाय। इसी प्रकार से सामूहिक सुरक्षा को भी मार्गेन्थाऊ व्यावहारिक नहीं मानता। उसके अनुसार सामूहिक सुरक्षा की सफलता की तीन शर्तें हैं

1- सम्भावित आक्रमण्कारी का मुकाबला करने के लिये पर्याप्त शक्ति हो

2- सामूहिक सुरक्षा में भाग लेने वाले देशों के बीच सुरक्षा की समस्या के बारे में मतैक्य हो। 3- सभी देश अपने निजी हितों को सामूहिक हित के लिए बलिदान करने को तैयार हों। मार्गेन्थाऊकहता हैं इतिहास गवाह है कि यह तीनों शर्तें कभी भी पूरी नहीं हो सकती। और विश्व शान्ति की समस्या सामूहिक सुरक्षा के द्वारा हल नहीं की जा सकती। मार्गेन्थाऊकहता है कि न्यायिक समझौतों के द्वारा भी युद्ध की समस्या हल नहीं की जा सकती। न्यायिक समझौतों से केवल कानूनी झगड़ों को निपटाया जा सकता है। परन्तु युद्ध के प्रायः राजनीतिक कारण अधिक हुआ करते हैं इसी प्रकार से शांतिपूर्ण परिवर्तन को भी मार्गेन्थाऊ प्रभावकारी नहीं मानता है। उसका कहना है कि यह योजना केवल आंन्तरिक मामलों में ही कारगर हो सकती है। मार्गेन्थाऊको अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की योजना भी मान्य नहीं है।

मार्गेन्थाऊ इस बात से भी सहमत नहीं हैं कि विश्व राजसत्ता की स्थापना के द्वारा स्थायी विश्व शांति स्थापित की जा सकती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि विश्व राजसत्ता के स्थायित्व में मार्गेन्थाऊ का विश्वास नहीं हैं वह यह मानता है कि विश्व राज्यसत्ता के बगैर स्थायी विश्व शान्ति संभव नहीं है। पर आज संसार में जो परिस्थितियां व्याप्त है। उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि विश्व राजसत्ता की स्थापना संभव नहीं है।

इस प्रकार से प्रतिबंध अथवा परिवर्तन द्वारा शांति स्थापना के किसी भी प्रयास को मार्गेन्थाऊ उपयोगी नहीं मानता। वह उन लोगों से भी सहमत नहीं है जो अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता, विश्व जनमत या अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा शांति स्थापना सम्भव मानते हैं। मार्गेन्थाऊ कहता है कि इतिहास में आज तक अन्तर्राष्ट्रीयवाद पर राष्ट्रवाद की ही विजय होती आयी है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून भी इसलिये प्रभावहीन है। क्योंकि विश्व में अभी तक कोई ऐसी केन्द्रीय सत्ता नहीं है जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून का निर्माण कर सके और उसकी सही व्याख्या करके सभी देशों को उसका पालन कर लेने के लिये बाध्य कर सके। अतः मार्गेन्थाऊ स्पष्ट रूप से कहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता, विश्व जनमत, या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के द्वारा शान्ति संघर्ष पर रोक नहीं लगा सकती ।

इन सभी प्रयासों को अनुपयोगी बताकर मार्गेन्थाऊ अन्त में परस्पर सहयोग, अर्थात नीति कुशलता के द्वारा शांति स्थापित करने की बात करता है। मार्गेन्थाऊके अनुसार कुशलता के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं । एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष । प्रत्यक्ष रूप से नीति कुशलता अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को नियंत्रित करती है। और, अप्रत्यक्ष रूप से विश्व समुदाय के विकास में सहायता करती है। पर मार्गेन्थाऊ कहता है कि नीति कुशलता अपने इन दोनों कार्यों को ठीक से तभी सम्पन्न कर सकती है जबकि वह निम्नलिखित नौ नियमों से बंधी हो । 1- नीति कुशलता, धर्म युद्ध की मध्यता से सदैव मुक्त रहनी चाहिये। 2- विदेश नीति के लक्ष्य राष्ट्रहित की मांग के आधार पर निर्धारित किये जाने चाहिए। इन लक्ष्यों की प्र्याप्त शक्ति द्वारा रक्षा करनी चाहिए। 3- राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करते समय दूसरे देशों के हित तथा दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखना चाहिए। 4- जरूरत पड़ने पर समझौता करने के लिए राष्ट्रों को सहज ही तैयार हो जाना चाहिए 5- राष्ट्रों को अनुमानित लाभों की अपेक्षा वास्तविक लाभों की अधिक चिन्ता करनी चाहिए । 6- राष्ट्रों को इस प्रकार की स्थिति नहीं पैदा करना चाहिए, जहॉ से हटना बाद में असम्भव हो जाय। और वहॉ से आगे बढ़ने में खतरनाक स्थिति उत्पन्नहोने की आशंका हो । 7- अपने से कमजोर किसी मित्र राष्ट्र को अपने लिये स्वयं निर्णय करने की छूट नहीं देनी चाहिए। 8- राज्य की सैनिक शक्ति हमेशा ही राजनीतिक शक्ति के अधीन रहनी चाहिए। 9- सरकार को जनता का सेवम नहीं बल्कि उसके नेता के रूप में कार्य करना चाहिए। मार्गेन्थाऊ का विश्वास है कि यदि इन नौ नियमों का पालन करते हुए नीति कुशलता का प्रयोग किया जाय तो शान्ति कीसमस्या काफी हद तक हल हो सकती हैं ।

मार्गेन्थाऊ का यह भी कहना है कि कूटनीति के अतिरिक्त दो अन्य साधनों के द्वारा भी शान्ति की रक्षा की जा सकती है। इसमें से एक तो हैं शक्ति संतुलन, और दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय कानून । अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता और जनमत के बन्धन। परन्तु सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन बन्धनों को प्रभावशाली कैसे कनाया जाय।

2.3.1.3 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की समालोचना

मार्गेन्थाऊ के राजनीतिक यथार्थवाद के सिद्धान्त की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। स्टेनली एच. हाफमैन का कहना है कि यह सिद्धान्त असंगतियों से भरा हुआ है। हाफमैन ने व्यवस्थित ढंग से मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है।

1. हाफमैन मार्गेन्थाऊके शक्ति सम्बन्धी विचारों से असहमत हैं यदि हम मार्गेन्थाऊके शक्ति के यथार्थवादी विश्लेषण को सही मान लें तो ऐसा लगेगा कि चिर काल से विश्व में केवल शक्ति की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो रहा है। शक्ति की इसी भूमिका के आधार पर मार्गेन्थाऊने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिको एक स्वतंत्र विषय माना है। हाफमैन का कहना है कि मार्गेन्थाऊका यथार्थवादी राजनीति का सिद्धान्त एकपक्षीय हो गया है। मार्गेन्थाऊयह भी स्पष्ट नहीं कर सके हैं कि वे स्वायत्तता की बात किस आधार पर कर रहे हैं जबकि स्वायत्तता मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद का एक प्रमुख तत्व है।

2. हाफमैन का कहना है कि राजनीति को शक्ति का पर्यायवाची बना देना , और शक्ति संघर्ष को ही राजनीति का सब कुछ मान लेना उचित नहीं है । राजनीतिक मानव से आर्थिक मानव धार्मिक मानव, आदि भी शामिल हैं। अतः उसके केवल एक पक्षीय स्वरूप पर ही बल देने और उसे सम्पूर्ण राजनीति मान लेने का दृष्टिकोण युक्त है। हाफमैन का कहना है कि मार्गेन्थाऊद्वारा शक्ति की व्याख्या एक दोषपूर्ण तथा घातक विचार है यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि राजनीति केवल बुराई है परयह राजनीति का एक विकृत स्वरूप होगा। यथार्थ नहीं । राजनीति को केवल बुराई ही नहीं कहा जा सकता क्योंकि मानव प्रवृत्ति में निहित तत्व अच्छे और बुरे दोनो ही होते हैं और इन्हीं तत्वों की अभिव्यक्ति राजनीति में भी होती है।

3. हाफमैन यह मानने को तैयार नहीं हैं कि सभ मानव कार्यों के मूल में उसकी प्रवृत्ति सन्निहित हैं परिस्थितियों के प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती । कई बार मनुष्य स्वभाव के कारण नहीं बल्कि परिस्थितिक बुराई कर बैठता है इस प्रकार से मार्गेन्थाऊका यथार्थवाद मानव प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी एक दोषपूर्ण तथा बहुत कुछ एकांगी विचार पर आधारित है।

4. हाफमैन ने एक आलोचना यह की है कि मार्गेन्थाऊ ने शक्ति पर कुछ अधिक ही बल दिया है। मार्गेन्थाऊशक्ति या राजनीतिक कार्यों का साध्य मानता है जबकि वास्तविकता यह है कि शक्ति के द्वारा राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार से शक्ति एक साधन है न कि साध्य । शक्ति के स्वरुप और उसकी मात्रा का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि उद्देश्य क्या है? यदि मार्गेन्थाऊ के उद्देश्यों के अध्ययन पर सही बल दिया होता तो वह शक्ति को साध्य बना देने की भूल न करता । हाफमैन इस बात पर खेद व्यक्त करता हैं कि मार्गेन्थाऊ ने उन सभी मान्यताओं को नकारा है जिनके आधार पर उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है।

5. इसके अतिरिक्त अध्ययन प्द्धतियों के दृष्टिकोण से भी केवल शक्ति के विचार पर ही बल देना ठीक नहीं हैं शक्ति स्वयं विभिन्न तत्वों का सम्मिलित स्वरूप हैं। शक्ति की इन विभिन्नताओं की उपेक्षा करके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र को अच्छी प्रकार से नहीं एमझा जा सकता। मार्गेन्थाऊने 18 वीं तथा 19वीं शताब्दी के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है और इस तथ्य की उपेक्षा की है कि आधुनिक 20वीं शताब्दी के संसार में विभिन्नता और टकराव की जो स्थितियां मौजूद हैं वैसी पहले नहीं थीं। राष्ट्रों की आन्तरिक राजनीतिक घटनाओं की विदेश नीतियों को प्रभावित करती है। विभिन्न और परस्पर विरोधी राजनीतिक गुट तथा दबाव समूह, निरंतर सक्रिय रहकर विदेश नीति के निर्णायक कर्ताओं को प्रभावित करते हैं। नीतियों को प्रभावित करने वाली शक्तियां आज तिजनी प्रबल हैं उतनी 19वीं व 18वीं शताब्दियों में नहीं थी। उस समय की राजनीतिक सरकारें आज जैसे राजीनतिक प्रभावों और दबावों से बहुत कुछ मुक्त थी।

6. हाफमैन ने मार्गेन्थाऊ के राष्ट्रहित सम्बन्धी विचारों की भी आलोचना की हैं तथा उन्हें दोषपूर्ण बताया है। हाफमैन का कहना है कि मार्गेन्थाऊकी राष्ट्रहित की कल्पना उस युग के लिये ठीक हो सकती थी जिसमें समाज एकरूपता लिये हुए हो लेकिन आधुनिक समाज ऐसे नहीं हैं। आधुनिक समाज में अन्तर्विरोधियों की भरमार है। आज के अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्रहित पर कहीं भी मत की एकता नहीं पाई जाती। आज का युग महान प्राविधिक और वैज्ञानिक विकास का है। जिसमें कि आए दिन राजनीतिक उथल पुथल हुआ करती है। भौगोलिक स्थितियों,प्राकृतिक साधनों तथा औद्योगिक क्षमताओं के बारे में हमारी पूर्व मान्यतायें बदल रही हैं। इन परिवर्तित स्थितियों, तथा मान्यताओं को ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि मार्गेन्थाऊके राष्ट्रहित सम्बन्धी विचारों में केवल एक ही दृष्टिकोण अपनाया गया हैं जो कि दोषपूर्ण है।

7. यदि मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त को मान लिया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केवल एक पहलू हैं और वह यह है - विभिन्न राष्ट्रों के हितों में टक्कर अतः हमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के विचार को हमेशा के लिए तिलांजलि देना होगा।

8. मार्गेन्थाऊ की यथार्थवादी राजनीति का एक तत्व विवेक है और मार्गेन्थाऊने विदेश नीति के विवेक पक्ष पर बहुत अधिक बल दिया है जबकि हाफमैन का कहना है कि आज का क्रान्तिकारी युग जटिलताओं से पटा पड़ा है, तथा कुछ राष्ट्र ऐसी विदेशनीतियों का अनुसरण करते हैं जो सर्वथा अविवेकपूर्ण लगती है। फिर भी वह उनके अपने हित में होती है।

9. मार्गेन्थाऊके यथार्थवादी सिद्धान्त का आधार मानव प्रवृत्ति हैं परन्तु मानव प्रवृत्ति संबंधी धारणायें वैज्ञानिक न होकर बहुत कुछ अनुमान पर आधारित हैं।

10. राजनीतिक यथार्थवाद में नैतिकता के तत्व की भी आलोचना की गई है। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि राष्ट्रहितों की पारस्परिक मान्यता के आधार पर विश्व के राष्ट्र संतुलित सम्बन्धों को स्थापित

कर सकते हैं और यही सर्वोच्च नैतिकता हैं किन्तु इस प्रकार की मान्यता, उसी संदर्भ में उचित हो सकती हैं जिसमें राष्ट्रहित विवादग्रस्त विषय न हो।

11. विद्वानों ने तो मार्गेन्थाऊ के सिद्धान्त को यथार्थवादी मानने से ही इन्कार कर दिया है। उनका आरोप है कि मार्गेन्थाऊ ने जगह जगह पर वस्तु स्थिति का उल्लेख करने के साथ साथ ''चाहिए'' जैसे आदर्श सूचक शब्द का भी प्रयोग किया है इस प्रकार से आलोचना यह की गई है कि मार्गेन्थाऊके विचारों को मानव प्रवृत्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रामाणिक तथा यथार्थवादी आधार नहीं माना जा सकता। मार्गेन्थाऊ के विचारों में असंगतियां हैं एक ओर तो उसने यथार्थवादी तथा आदर्शवादी तत्वों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है दूसरी ओर नियतिवाद, तथा पुरूषार्थवाद जैसे विरोधी विचारों में तालमेल बैठाने की कोशिश की है। विश्लेषण से पता चलता है कि मार्गेन्थाऊ का सिद्धान्त यथार्थवादी होने के साथ साथ मूल्य परक भी है। इसी प्रकार से हम देखते हैं कि कूटनीति के द्वारा शान्ति स्थापना के प्रयोग में मार्गेन्थाऊ ने योग्य राजनीतिज्ञों की आवश्यकता पर बल दिया है किन्तु वह यह स्पष्ट नहीं करता कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संघर्ष पर आधारित है और संघर्षों का समाधान कूटनीति के द्वारा ही संपन्न है तो इस प्रकार की स्थिति में बेचारे शांतिवादी राजनीतिक किस प्रकार से प्रवेश पा सकेंगे। और शान्ति स्थापना का आदर्श किस प्रकार से प्राप्त करेंगे। आलोचकों का कहना है कि मार्गेन्थाऊ ने परस्पर विरोधी तत्वों और विचारों का सहारा लेकर अपने सिद्धान्त में विभिन्न सैद्धान्तिक जटिलताओं को पैदा कर दिया है।

3.4 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवादी सिद्धान्त का महत्व

मार्गेन्थाऊ का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वानों के लिए भारी वाद विवाद का विषय बना हुआ है। हाफमैन तथा बेनो वासरमैन जैसे विद्वानों ने इसकी कटु आलोचना की हैं तो केनेथ डब्ल्यू. थामसन तथा डेविड सिंगर जैसे विद्वानों ने इस सिद्धान्त की काफी प्रशंसा की है। हेराल्ड स्प्राउट, क्विन्सी राइट जैसे विद्वानों ने मार्गेन्थाऊ की देन को स्वीकार करते हुए उसे अपूर्ण कहा है।

मार्गेन्थाऊके यथार्थवादी सिद्धान्त की आलोचनाएं सबल हैं किन्तु पूर्ण सत्य नहीं हैं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में यथार्थवादी सिद्धान्त की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सिद्धान्त ने राष्ट्रीय हितों और उनकी प्राप्ति के लिये शक्ति के प्रयोग सम्बन्धी गम्भीर विचारों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पहली बार व्यापक विश्लेषण किया है और इस प्रकार से इस विषय को सैद्धान्तिक आधार दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय हितों के महत्व और उनके फलस्वरुपउत्पन्न होने वाले संघर्षों आदि तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता। यह एक कटु सत्य है कि आज का युग एक बड़ी सीमा तक शक्ति संघर्ष का युग है जिसमें राजनीति के सभी दांव पेचों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने हित को ध्यान में रखकर ही अपनी विदेश नीति का संचालन करता हैं

प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ पूर्ति में संलग्न हैं और उसका स्वार्थ यह है कि वह अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करें। इस बात पर जोर देकर यथार्थवादी विचारधारा दो प्रमुख संदेश देती हैं पहला संदेश यह है कि विदेश नीति ऐसी बनायी जाये जो शक्ति बढ़ाने तथा उसको बनाए रखने में अधिक से अधिक सहायता कर सके। दूसरा संदेश यह है कि हम अपनी विदेश नीति का निर्माण करते समय यह भी ध्यान में रखें कि दूसरे देश का राष्ट्रीय हित क्या है, तथा वह यथासंभव हमारे हित से टकराए नहीं।

इसके अतिरिक्त चूंकि यथार्थवादी सिद्धान्त का आधार बुद्धि है अतः इससे प्रभावित होकर विदेश नीति की वृद्धि तथा तर्क पर आधारित होगी। इस प्रकार की विदेश नीति राजनीतिक रूप से सफल होती है तथा नैतिक रूप से भी उसकी प्रशंसा की जाती है। यह विदेश नीति का एक बड़ा गुण माना जाता है कि वह यथार्थवादी हो।

पिछले कई वर्षों से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को वैज्ञानिक आधार पर अधिक से अधिक व्यवस्थित रूप देने की कोशिश की गई है और अनेक दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये हैं जैसे रिचर्ड स्नाइडर का नीति निर्धारण सम्बन्धी दृष्टिकोण, कैपलान का व्यवस्था विश्लेषण , चार्ल्स मैकमिलन कासामान्य व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण, जार्ज लिस्का का साम्यावस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण, यह सब प्रयास इस ओर संकेत करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त से काफी आगे बढ़ चुका है। व्यवस्था दृष्टिकोण को आज यथार्थवादी दृष्टिकोण की अपेक्षा अधिक विकसित माना जाता है। लेकिन यह सारी बातें मार्गेन्थाऊ की देन इस रूप में भी कम नहीं हैं कि उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर दूसरे विचारकों को भी इस दिशा में कार्य करने के लिए प्ररित किया। केनेथ डबलु. थम्पसन का लिया है। कि मार्गेन्थाऊ का सिद्धान्त अभी विकास की अवस्था में है।

2.4 नव यथार्थवाद

केन्नेथ वाल्टज़ का ढाँचागत यथार्थवाद

केन्नेथ वाल्टज के ढाँचागत यथार्थवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वानों पर गहरा प्रभाव डाला है। उसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में राज्यों के व्यवहार को तय करने का प्रमुख कारक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का ढाँचा है। उसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में कोई केन्द्रीय सत्ता व्यवस्था बनाये रखने के लिये नहीं है।

दूसरी प्रमुख बात वाल्टज के नव यथार्थवाद की है वह है उसकी शक्ति की अवधारणा। जहाँ परम्परगत यथार्थवाद शक्ति के विभिन्न तत्वों में सैन्य शक्ति को सबसे अधिक महत्व देता है। वहीं वाल्टज इससे सहमत नहीं है। उसका कहना है कि शक्ति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व सिर्फ सैन्य शक्ति ही नहीं है क्योंकि किसी भी देश की शक्ति उसकी संयुक्त क्षमताओं से आती है। वैसे वह परम्परागत

यथार्थवाद से इस बात पर सहमत है कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में व्यवस्था कायम रखने के लिए शक्ति के संतुलन की आवश्यकता होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें मात्र अस्तित्व में रहने से प्रभावी नहीं होती हैं जैसा कि नव उदारवाद का मानना है, बल्कि उनके प्रभावी होने के लिये उनको विश्व की प्रमुख शक्तियों का समर्थन आवश्यक है।

तीसरा अंतर वाल्टज के यथार्थवाद और पारम्परिक यथार्थवाद में यह है कि जहॉ पारम्परिक यथार्थवाद अराजकता को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की एक परिस्थिति मानता है वहीं नवयथार्थवाद का मानना है कि अराजकता स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को परिभाषित करती है। जहाँ परम्परागत यथार्थवाद के अनुसार अराजकता की स्थिति में राज्य अपने क्षेत्रफल , जहॉ पर वे स्थित है, घरेलू राजनीति तथा नेतृत्व के गुणों के आधार पर क्रिया- प्रक्रिया करते हैं वहीं वाल्टज के अनुसार राज्य अपनी शक्ति और क्षमताओं के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय जगत की अराजकता से निपटते हैं क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय जगत को आराजकता ही परिभाषित करती है इसलिये वह हर राज्य के लिये एक समान है।

जोसेफ ग्रीको का नवयथार्थवाद

उसके अनुसार राज्य अपनी शक्ति और प्रभाव को बढ़ाने में रूचि रखते हैं इसलिये वे अपनी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अन्य कारकों एवं राज्यों से सहयोग करते हैं। परन्तु वे किसी भी सहयोगात्मक प्रयास में अन्य राज्यों द्वारा अर्जित शक्ति और प्रभाव पर भी नजर रखते हैं तथा उससे किसको अधिक लाभ हो रहा है आज के प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में।

नव यथार्थवाद के प्रमुख तत्वः

1.राज्य एवं अन्य कारक एक अराजक माहौल में कार्य करते हैं जिसमें कि कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं रहती है।

2.व्यवस्था का ढाँचा कारकों के व्यवहार को निर्धारित करता हैं।

3.राज्य स्वार्थपरक होते हैं तथा अराजक एवं प्रतिस्पर्धात्मक व्यवस्था राज्यों को अपने स्वार्थ को सहयोगात्मक व्यवहार के आगे प्राथमिकता देने के लिये मजबूर करती है।

4.राज्य बुद्धिपरक कारक है जो अपने लाभ को बढ़ाना और नुकसान को कम करना चाहेंगे।

5.अराजकता द्वारा प्रस्तुत सबसे गम्भीर समस्या है अपने अस्तित्व को बचाये रखना।

6.राज्य दूसरे राज्यों को भावी शत्रु तथा अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये खतरा मानते हैं।

आक्रामक एवं सुरक्षात्मक नव यथार्थवाद

आक्रामक यथार्थवाद के प्रमुख प्रवक्ता जॉन मीयरशाईमर हैं। यह परम्परागत यथार्थवाद की तरह मानता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में संघर्ष तो रहना ही है तथा राजनेताओं को शक्ति का विस्तार करने वाले राष्ट्रों से सावधान रहना चाहिए। वहीं सुरक्षात्मक यथार्थवाद युद्ध की कीमतों को समझता है तथा युद्ध को समाज की अतार्किक शक्तियों का परिणाम मानता है। विस्तारवादी शक्तियाँ ;मगचंदेपवदंतल चवूमतेद्ध जो सैन्य शक्ति का प्रयोग करना चाहते हैं वे संसार में बिना शस्त्र के रहना कठिन कर देते हैं। सहयोग तो मित्र देशों के साथ ही सम्भव है। आक्रामक यथार्थवाद का मानना है कि राज्यों के आपसी हितों एवं लक्ष्यों के बीच सामन्जस्य न हो पाने से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में संघर्ष अवश्यम्भावी है तथा इसलिये राष्ट्रों को अपने रक्षा बजट में कटौती नहीं करना चाहिये क्योंकि वे अपने को फिर उन राष्ट्रों के हमले का ठिकाना बना लेंगे जो अपनी शक्तियों का विस्तार करना चाहते हैं।

2.5 आदर्शवाद

यथार्थवादियों के विपरीत, आदर्शवादी शक्ति राजनीति को इतिहास तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अस्थाई पक्ष मानते हैं। उनका कहना है कि यथार्थवाद एक ऐसी अवधारणा है जो इतिहास के वास्तविक अर्थ को तोड़ती, मरोड़ती तथा भ्रष्ट करती है। आदर्शवाद समाज के क्रमिक विकास में विश्वास रखता है। इस दृष्टिकोण का प्रारम्भ 18वीं शताब्दी में हुआ था और यह फ्रेन्च तथा अमरीकी क्रान्तियों के पीछे प्रेरणा का एक प्रमुख श्रोत था। कान्डरसेट इस दृष्टिकोण का प्रथम प्रमुख विचारक था। 1795 में उसने अपनी पुस्तक, **स्केच फार अ हिस्टारिक्ल पिक्चर आफ दि प्रोग्रेस आफ दि हयूमन स्पिरिट**, में एक ऐसी आदर्श विश्व व्यवस्था की कल्पना की है जिसमें युद्ध, विषमता तथा अत्याचार का सर्वथा अभाव हो, तथा विवेक शिक्षा, विज्ञान आदि के माध्यम से मानव कल्याण की धारा बहे।

संक्षेप में, आदर्शवाद भावी अन्तर्राष्ट्रीय समाज की वह तस्वीर खींचता है जिसमें शक्ति राजनीति, हिंसा, तथा अनैतिकता आदि के लिये कोई स्थान नहीं है। आदर्शवादियों का विचार है कि समुचित शिक्षा तथा प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सहायता से हम आज की अपेक्षा एक अधिक अच्छे संसार का निर्माण कर सकते है। उनका तर्क है कि अतीत में जो राजनीतिक संघर्ष हुए, वह शक्ति या प्रभाव के लिये नहीं हुए, बल्कि परस्पर विरोधी आदर्शों के बीच होने वाले संघर्ष थे। कल्पनावादी आदर्शवादियों का सुझाव है -

1- अन्तर्राष्ट्रीय जगत में परम्परागत शक्ति नीति का परित्याग, तथा नैतिक सिद्धान्तों का पालन किया जाए।

2- लोकतंत्र विरोधी सर्वाधिकारवादी शक्तियों के प्रभाव को समाप्त करने का हर संभव प्रयास किया जाए।

3- एक विश्व सरकार की स्थापना द्वारा शक्ति राजनीति को समाप्त किया जाए।

2.6 यथार्थवाद बनाम आदर्शवाद

राजनीतिक यथार्थवाद और राजनीतिक आदर्शवाद में परस्पर विरोध का सबसे बड़ा केन्द्र बिन्दु शक्ति की समस्या है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद वुडरो विल्सन तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बी.रसेल आदर्शवाद के प्रवर्तक रहे हैं। दो महायुद्धों के बीच, यथार्थवाद और आदर्शवाद के बीच विरोध काफी खुलकर सामने आया। यथार्थवाद को राष्ट्रीयता और आदर्शवाद को अन्तर्राष्ट्रीयता से सम्बद्ध समझा गया। साथ ही इस धारणा को भी बल मिला कि यथार्थवाद की नीतियाँ शांति विरोधी हैं, तथा उनका उद्देश्य राष्ट्रीय शक्ति का प्रसार है। इसके विपरीत साधारणतया यह समझा गया कि आदर्शवाद की नीतियाँ शांति को प्रोत्साहन देने वाली हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो हम कह सकते हैं कि यथार्थवाद और आदर्शवाद के बीच संघर्ष का प्रमुख कारण यह है कि यथार्थवादी यह तय नहीं कर पाए हैं कि शक्ति का अनुसरण एक लक्ष्य है अथवा साधन। एक ओर तो उन्होंने शक्ति को सर्वोच्च मूल्य माना है, जिसकी प्राप्ति के लिये राज्य को प्रभावशील रहना चाहिए, तथा दूसरी ओर शक्ति को साधन के रूप में भी स्वीकार किया है।

यथार्थवाद तथा आदर्शवाद इन दोनों दृष्टिकोणों ने वास्तव में अतिवादी दृष्टिकोण अपना रखा है। एक उत्तर की ओर जाता है तो दूसरा दक्षिण की ओर। आवश्यकता इस बात की है कि समय और जरूरत के अनुसार दोनों दृष्टिकोणों की अच्छाइयों को अपनाया जाए। राजनीतिक रूप में यह उपयुक्त है कि राष्ट्रीय हितों के अनुसार सफलतापूर्वक कार्य किया जाए, पर साथ ही नैतिक और राजनीतिक विवेक की मांग है कि यथा सम्भव अधिक से अधिक नैतिक मार्ग का भी इस तरह से अनुसरण किया जाए कि आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

आभ्यास प्रश्न

१आदर्शवाद समाज के क्रमिक विकास में विश्.वास रखता है ? सत्य असत्य/

२फार अ हिस्टारिक्ल पिक्चर आफ दि प्रोग्रेस आफ दि हयूमन स्पिरिट स्केच., पुस्तक किस सन में प्रकाशित हुई थी ?

३ मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद के कितने सिद्धांत है.?

४ यथार्थवादी सिद्धान्त के प्रमुख प्रवक्ता कौन हैं .?

2.7 सारांश

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के निमित विकसित प्रमुख उपागमों का वर्णन किया गया है।

उपागम का आशय उस मापदण्ड से है जिसका प्रयोग अनुसंधान के दौरान समस्या और आंकड़े के चयन के लिये किया जाता है। प्रत्येक विषय के अपने निश्चित उपागम होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कुछ प्रमुख उपागम है: परम्परागत ऐतिहासिक संस्थात्मक उपागम,आदर्शवादी उपागम, यथार्थवादी उपागम तथा वैज्ञानिक/ व्यवहारवादी उपागम।

ऐतिहासिक संस्थापक उपागम 18वीं और 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में विशेष लोकप्रिय रहा। ऐतिहासिक उपागम वर्तमान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विश्लेषण भूतकाल के घटनाक्रम के आधार पर करना चाहता है। संस्थात्मक उपागम दोनों विश्व युद्धों के बीच के समयकाल में विशेष लोकप्रिय हुआ। इस उपागम में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के माध्यम से विश्व शान्ति करने पर विशेष बल दिया गया।

आदर्शवादी उपागम 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चार दशकों में विशेष चर्चित रहा। यह उपागम मनुष्य को एक विवेकशील प्राणी मानता है और तदानुसार इसकी यह मान्यता है कि राष्ट्रों के मध्य सामन्जस्य पूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

यथार्थवादी उपागम 18वीं और 19वीं सदी में लोकप्रिय रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह पुनः चर्चा में आया। हैन्स जे. मार्गेंथाऊ को इस उपागम का प्रतिनिधिकारी विचारक माना जाता है। इस उपागम की यह मान्यता है कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अन्य सभी राजननीति की भॉति, शक्ति के लिये संघर्ष है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय हित, शक्ति और संघर्ष को सर्वाधिक महत्व देता है और यह मानता है कि 'शक्ति के संदर्भ में परिभाषित राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति है।

1945 के बाद समयकाल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक व्यवहारवादी उपागम विकसित हुए। ये सभी उपागम वैज्ञानिक भी कहे जाते हैं। ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्यों के व्यवहार के बारे में सामान्यीकरण करने के लिये परिमाणन और संख्यकीय विश्लेषण का प्रयोग करते है। व्यवस्था उपागम राष्ट्रों के मध्य अन्तः क्रिया पर बल देता है। निर्णय निर्माण उपागम निर्णय निर्माण कर्ताओं द्वारा लिये गये निर्णयों का अध्ययन करके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के व्याख्यायित करना चाहता है। इस उपागम से जुड़े कुछ विद्वानों का मत है कि निर्णय निर्माण में सबसे प्रमुख भूमिका पर्यावरण या वातावरण की होती है। कुछ दूसरे विद्वानों का मत है कि निर्णय निर्माण में सबसे प्रमुख भूमिका निर्णय लेने वाले के व्यक्तित्व की होती है। खेल उपागम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को 'रणनीति का

खेल' मानता है। सौदेबाजी का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय वार्ताओं के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्याख्या का प्रयास करता है।

2.8 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - राष्ट्रों के मध्य राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध -इसमें काफी व्यापकता पाई जाती है। उसके अन्तर्गत राष्ट्रों के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कानूनी राजनीतिक खोज एवं अन्वेषण सम्बन्धी, और इसी प्रकार के सभी सम्बन्ध आ जाते हैं।

कूटनीति- अन्तरष्ट्रीय राजनीति में कूटनीति को विदेश नीति को यर्थाथ रूप में क्रियान्वित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। मार्गेन्थाऊ जैसे विचारक इसे अन्तराष्ट्रीय राजनीत का आँख और कान भी कहते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.सत्य ,२. 1975 , ३. 6 , ४. मार्गेन्थाऊ,

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.Stanley Hoffman : Conflicting Approaches to the Study of International Relations

2.Trevor Taylor : Theories of International Relations.

3.Mahendra Kumar : Theoretical Aspects of International Relations.(Hindi Edition also)

4.Prakash Chandra : International Policies

5.बाबू लाल फाड़िया: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.मार्गेंथाऊ, हैन्स (1960), *पॉलिटिक्स अमोंग नेशन*, मैकमिलन-हिल ह्युमेनिटिज़।

2.ऑरगेन्सकी (1958), *वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया।

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के परम्परागत उपागम की चर्चा कीजिए।

2.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के यथार्थवादी उपागम की विवेचना कीजिए।

3.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के व्यवहारवादी उपागमों की विवेचना कीजिए।

4.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के विभिन्न उपागमों की संक्षिप्त चर्चा करते हुये यह बताइये कि आप इनमें से किसे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और क्यों ?

इकाई ३ :अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति कि अवधारणा

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 शक्ति का अर्थ

3.4 शक्ति संतुलन और अंतर्राष्ट्रीय इकाईयां

3.5 राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले तत्व

3.5.1 अंतर्राष्ट्रीय कानून

3.5.2 अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता

3.5.3 विश्व जनमत

3.5.4 अंतर्राष्ट्रीय संगठन

3.5.5 सामूहिक सुरक्षा

3.5.6 नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रंथ

3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्यक्रम

3.11 निंबधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अंतराष्ट्रीय राजनीति को यदि गहनतापूर्वक विश्लेषण करें तो स्पष्ट है कि यर्थाथ रुप में नि:संदेह यह राज्यों के बीच शक्ति-संघर्ष के इर्द-गिर्द परिक्रमा करती है। शक्ति उन मूल्यों व हितों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है जिन्हें राष्ट्र बनाए रखना तथा बढ़ाना चाहते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को सीमित करने वाला भी तत्व के रुप में देखा जाता है क्योंकि प्रत्येक राज्य अपने संसाधनों व सामर्थ्य व साथ-साथ दूसरे राष्ट्रों की शक्ति द्वारा सीमित होता है जो कि इच्छित लक्ष्यों की प्राप्त में रुकावट उत्पन्न करता है। एक बड़े स्थूल अर्थ में 'राष्ट्रीय शक्ति या शक्ति एक ऐसी सामर्थ्य या योग्यता है जिसके अंतर्गत दूसरों को नियंत्रित करने, उससे अपना मनचाहा व्यवहार कराने व उससे अपने मनचाहा व्यवहार करने से रोकना है'। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये होलस्टी ने कहा है 'राष्ट्रीय शक्ति दरअसल राज्य की सामान्य क्षमता है जिसके अंतर्गत वह राज्य दूसरे राज्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करता है' (on the general capacity of states to control the behavior of others.) इसी को और व्यवस्थित तरीके से स्पष्ट करते हुये वी.वी डाईक ने राष्ट्रीय शक्ति को बलपूर्वक क्रिया में देखा है। डाईक के अनुसार, 'शक्ति इच्छा से माने गये प्रभाव से अलग बलपूर्वक मनवाया गया प्रभाव है' (Coercive, influence, distinguished from persuasive influence.) गौरतलब है कि राष्ट्रीय शक्ति को संघर्ष के रुप में रेखांकित करते हुये मॉरगेन्थाऊ ने कहा है कि शक्ति दो राजनीतिक इकाईयों के मध्य संबंधों की प्रतीक है। उसका अभिप्राय यह है कि एक राज्य यानि A के पास इतनी क्षमता होती है कि वह B के कार्यकलापों को नियंत्रित कर सके। इसी को और व्यवस्थित रुप से परिभाषित करते हुये वह लिखते हैं कि शक्ति एक व्यक्ति की वह सामर्थ्य है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क व कार्यों को नियंत्रित करता है (man's control over the minds and action of other men.) अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति को प्राप्त करने की चाह व इच्छा किसी राष्ट्र का परम उद्देश्य के रुप में देखा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र अधिकाधिक शक्ति विस्तार, उसका प्रर्दशन व उसकी अभिवृद्धि का प्रयास करता है। अपनी शक्ति को अधिकाधिक विस्तार देने के लिये कई बार कई राष्ट्र दूसरे पर अपनी इच्छा का आरोपीकरण भी करते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुये जार्ज श्वाजनबर्जर ने शक्ति को अपनी इच्छा का दूसरों पर आरोपीकरण तथा अपालन की स्थिति में प्रभावकारी क्षमता के रुप में देखा है। यही कारण है कि कई बार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को शक्ति के लिये संघर्ष के रुप में भी परिभाषित किया जाता है। शीतयुग काल तक ऐसा ही प्रतीत होता था कि कोई राष्ट्र केवल अपने शक्ति बढ़ाने के लिये राजनीतिक शक्ति का ही प्रयोग कर सकता है। परंतु 1990 के बाद सोवियत संघ के विघटन के उपरांत ऐसा लगा मानों दुनियाँ एक ध्रुवीय विश्व की ओर उन्मुख हो रही है। भूमंडलीय व सूचना तकनीकी क्रांति के बाद राष्ट्रीय शक्ति के स्वरुप में भी परिवर्तन आ रहा है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में शक्ति की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- शक्ति के अर्थ और उसके अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महत्त्व को जान सकेंगे
- राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले तत्वों को जान सकेंगे

3.3 शक्ति का अर्थ

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के यथार्थवादी अवधारणा में शक्ति की अवधारणा केन्द्रीय तत्व है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रसंग में शक्ति का अर्थ है राजनीतिक शक्ति, जो विभिन्न रूपों में अपने आप को व्यक्त करती है। शक्ति की अवधारणा एक सापेक्ष अवधारणा है, जिसमें बहुत सारे घटक प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से शक्ति के तत्व को निर्धारित करते हैं। शक्ति की अवधारणा की व्यापकता और अनिवार्यता के बावजूद, शक्ति की अवधारणा को परिभाषित करना अत्यंत कठिन है। अलग-अलग संदर्भों और अलग-अलग परिस्थितियों में शक्ति की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दिखायी देती है। शक्ति के भिन्न-भिन्न संदर्भ और परिभाषा होने के बाद भी इसका केन्द्रीय तत्व एक ही है। किसी भी इकाई द्वारा किसी अन्य इकाई को इस रूप में प्रभावित करने की क्षमता, जिसके द्वारा वह इकाई अपना वांछित करा सके, शक्ति है। शक्ति स्थूल सिद्धांत न होकर व्यावहारिक, गत्यात्मक और क्रियात्मक सिद्धांत है। शक्ति की अवधारणा स्थानीय से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक व्यावहारिक रूप में प्रयुक्त होती है। राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रकट स्वरूप, सत्ता के विविध रूपों एवं पक्षों में दृष्टिगत होता है। कौटिल्य के मण्डल सिद्धांत से लेकर मार्गेंथाऊ के सिद्धांत तक शक्ति का विश्लेषण दृष्टिगत होता है। प्राचीन भारतीय राजशास्त्र के सिद्धांतों में 'दण्ड' (अथवा शक्ति) राज्य के महत्वपूर्ण घटकों में से एक है जिसके बिना राज्य की परिकल्पना पूर्ण नहीं हो सकती। मनु और कौटिल्य के साप्तांग सिद्धांत के साथ ही, प्राच्य दर्शन के अनेक ग्रंथों में राज्य के संदर्भ में शक्ति की भूमिका प्रतीकात्मक रूप में दर्शायी गयी है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में शक्ति की अवधारणा उस केन्द्रीय धुरी के समान है जिसके आधार पर ही सैद्धांतिक विश्लेषण निरूपित होते हैं और राज्यों के व्यवहार निर्दिष्ट किए जाते हैं। शक्ति की सामान्य और सार्वभौमिक परिभाषा बर्टेण्ड रसेल द्वारा 'किसी दूसरे के आचरण को प्रभावित करने की क्षमता' के रूप में दी गयी है, जो व्यक्ति से लेकर समाज और स्थानीय से लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक समान रूप से लागू होता है। शक्ति के आयाम सामान्य तौर पर भौतिक रूप से उपल्ब्ध तत्वों से ही समझा जाता है तथापि अमूर्त निराकार विचारात्मक, भावात्मक और मूल्यपरक तत्वों का भी शक्ति के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में शक्ति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद भी उसे राज्य के हितों की पूर्ति के साधन के रूप में ही स्वीकार किया जाता है न कि साध्य के रूप में। इस अर्थ में शक्ति संतुलन अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में एक

प्रक्रिया मात्र है जो तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में राज्य की भूमिका ही इंगित करता है। हैनस जे मार्गेंथाऊ और कैनेथ वाल्ट्ज जैसे विचारक, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति की धारणा के प्रबल समर्थकों में से एक हैं। मार्गेंथाऊ जो कि शास्त्रीय यथार्थवाद के प्रबल प्रवर्तकों में से हैं, के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का सार, राष्ट्र-राज्यों के बीच अनवरत शक्ति संघर्ष है जिसे राष्ट्रहित के संदर्भ में परिभाषित किया जा सकता है। ये राष्ट्र-राज्यों के बीच अनवरत शक्ति संघर्ष ही शक्ति संतुलन के केन्द्र में है जो एक अराजक व्यवस्था को यथा संभव व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का यत्न करता है। मार्गेंथाऊ ने भी अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स अमंग नेशन्स; स्ट्रगल फॉर पॉवर एण्ड पीस' में इस बात को स्वीकार किया है कि, राष्ट्रीय शक्ति असीम नहीं होती। अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में इसे सीमित एवं अनुशासित रखने के कई उपकरण विद्यमान हैं। इसमें सबसे प्रमुख शक्ति संतुलन है जिसके चलते अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी का कोई भी सदस्य या व्यवस्था में शामिल कोई समूह, इसे असंतुलित कर सर्वशक्तिमान नहीं बनने देता।

3.4 शक्ति संतुलन और अंतर्राष्ट्रीय इकाईयां

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में जब शक्ति की बात की जाती है तो वह तब तक पूर्ण नहीं कही जा सकती जब तक कि उसका अध्ययन **शक्ति संतुलन के सन्दर्भ में न किया जाए**।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति संतुलन की सम्पूर्ण अवधारणा ही अंतर्राष्ट्रीय इकाईयों और विशेष रूप से राष्ट्र राज्यों के हितों और उसके निमित्त अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को प्रभावित करने वाले कारकों पर ही अवलम्बित है। राष्ट्र-राज्य निरंतर अपने हितों को प्रभावी रूप से साधने और उसके निमित्त अंतर्राष्ट्रीय इकाईयों को प्रभावित करने की चेष्टा में लगे रहते हैं। राष्ट्र-राज्यों द्वारा सामान्यतया निम्न छः तरीकों के इस्तेमाल के द्वारा शक्ति संतुलन को स्थापित करने की चेष्टा की जाती है-

1.शक्ति की आपेक्षिक श्रेष्ठता स्थापित करने की चेष्टा द्वारा जो सामान्य रूप से सामरिक शक्ति के रूप में दृष्टिगत होती है।
2.अधिकाधिक क्षेत्र पर आधिपत्य का प्रयास। उदाहरण रूप में चीन द्वारा दक्षिण चीन सागर सहित अन्य क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास कर एशियाई क्षेत्र में शक्ति संतुलन अपने पक्ष में करने की निरंतर चेष्टा।
3.दो अमित्र राज्यों के मध्य बफर राज्य की स्थापना जिससे दोनों प्रतिद्वंदी अमित्र राज्यों को अलग कर युद्ध की संभावना को कम करना। उदाहरण- प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व पोलैण्ड रूस और जर्मनी के मध्य बफर राज्य था।
4.संधि या संश्रय भी शक्ति संतुलन स्थापित करने का तरीका है जो प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व धुरी और मित्र राष्ट्रों तथा अन्य राज्यों के साथ गुप्त संधियों में दिखायी देता है।

5.अंतःक्षेप या हस्तक्षेप भी शक्ति संतुलन का एक तरीका है जिसे सशक्त राष्ट्रों द्वारा अपने हितों के संवर्धन के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

6.विरोधी के मित्रों को अपने साथ मिलाकर, अलग या तटस्थ कर शक्ति वितरण को प्रभावित किया जाता है। ब्रिटेन द्वारा फूट डालो और राज करो की नीति इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

इस प्रकार राज्यों द्वारा व्यवहार में इन तकनीकों का प्रयोग कर शक्ति संतुलन को अपने हितों के अनुरूप करने की चेष्टा निरंतर की जाती है। राष्ट्र-राज्यों के साथ ही अनेक अंतर्राष्ट्रीय इकाईयों (संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक आदि) की गतिविधियां भी राष्ट्रों के व्यवहार को प्रभावित करती हैं और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में शक्ति संतुलन की अवधारणा को एक नवीन पक्ष प्रदान करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्र-राज्य अनिवार्य घटक हैं, जिसके बिना अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती है। इस अर्थ में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति संतुलन की कल्पना भी विविध अंतर्राष्ट्रीय इकाईयों की भूमिका के बिना करना सम्भव नहीं है क्योंकि अंततः उनका सामर्थ्य, व्यवहार और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रति उनकी धारणा ही शक्ति संतुलन को निर्धारित करने की अनिवार्य शर्त है। यूरोपीय शक्ति संतुलन को परिभाषित करने वालों में आस्ट्रिया के काऊन्ट मेटरनीख का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उन्होंने ही कॉनसर्ट ऑफ यूरोप नामक राजनयिक बिरादरी की नींव रखी। मेटरनीख का मानना था कि यूरोप के सभी राजवंशों को एकजुट होने की आवश्यकता है, अन्यथा राजतंत्र के उन्मूलन के लिए सक्रिय क्रांतिकारी ताकतें उन्हें समाप्त कर देंगी। शक्ति संतुलन की सबसे स्पष्ट घोषणा 1802 के मुनरो सिद्धांत में दिखायी देता है। 1802 में तत्कालीन अमेरीकी राष्ट्रपति मुनरो ने यह घोषणा की कि, संयुक्त राज्य अमेरीका, दक्षिणी अमेरीकी महाद्वीप में किसी यूरोपीय ताकत का हस्तक्षेप किसी भी स्थिति में बर्दास्त नहीं करेगा। यह माना जाता है कि, शक्ति संतुलन की प्राथमिकता वाले राजनय के कारण ही 19वीं सदी में यूरोप युद्ध से बचा रहा। 20वीं सदी के छोटे-छोटे संघर्षों से लेकर प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध तक, सभी किसी शक्ति के प्रभाव की स्थापना के प्रयास थे और संतुलन को अपने पक्ष में करने का यत्न। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात पुरानी ताकतें कमजोर हो गयीं और संतुलन को अपने पक्ष में करने के प्रयास में निष्फल रही और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में नयी ताकतें अपनी नयी भूमिका निभाने को तैयार खड़ी थीं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात राज्यों की शक्ति का एक नया मापदण्ड परमाणु हथियार के रूप में आ चुका था जिसने परम्परागत शक्ति संतुलन के आयाम को पूरी तरह बदल दिया। एटमी हथियारों के प्रयोग ने शक्ति की परिभाषा ही बदल दी। शीत युद्ध के दौर में परस्पर विरोधी ध्रुवों द्वारा एक दूसरे की शक्ति को संतुलित करने का यत्न किया गया। उनके बीच की प्रतिस्पर्धा यद्यपि तीव्र थी और कोई छोटी सी घटना भी भयावह रूप धारित कर सकती थी, तथापि दो परस्पर विरोधी गुटों के पास लगभग बराबर के सामर्थ्य ने एक दूसरे की शक्ति को संतुलित करते हुए युद्ध की संभावना को कम किया। परमाणु हथियारों की उपस्थिति और उसके प्रयोग की संभावना ने, शक्ति संतुलन को

आतंक के संतुलन में परिणीत कर दिया। उत्तर कोरिया, पाकिस्तान आदि राज्यों के द्वारा परमाणु हथियारों के गैर जिम्मेदाराना प्रयोग की संभावना, आतंकी समूहों द्वारा इनको प्राप्त करने की चेष्टा ने इस आतंक के संतुलन को और भी भयावह कर दिया है।

इस शक्ति संतुलन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शक्ति प्रबंधन व शक्ति परिसीमन होता है। शक्ति संतुलन के बिगड़ने के खतरे से किसी भी देश को अनुचित रुप में शक्तिशाली बनने की आज्ञा नहीं होती है। यदि कोई राज्य अनुचित रुप से शक्तिशाली बनता है अथवा बनने का यत्न करता है तो दूसरे राज्य अकेले या सामूहिक रुप से अपनी शक्तियों को इकट्ठा करके उस राज्य के विरुद्ध शक्ति की प्रबलता खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार ये राज्य युद्ध अथवा दूसरे साधनों के द्वारा चुनौती देने वाले राज्य की शक्ति को कम करके शक्ति-संतुलन को बनाये रखते हैं। इस सिद्धांत को 19वीं सदी में यूरोपीय देशों द्वारा अपने आपसी संबंधों की रक्षा हेतु प्रयोग में लाया गया था। 1815-1914 के वर्षों के दौरान बड़े युद्धों को रोकने के लिये यह व्यवस्था सफल रही। परंतु अब शक्ति संतुलन व्यवस्था में कई प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन से अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति नियंत्रण व शक्ति प्रबंधन में अपने महत्व को खो दिया है।

3.5 राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले तत्व

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रों के मध्य शक्ति संधर्ष एक विवाद रहित सच्चाई के रुप में सामने दिखाई पड़ती है। राष्ट्र-राज्य अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का मुख्य कर्ता है और वे अपने राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों की प्राप्ति शक्ति द्वारा करना चाहते हैं। इस सत्य के समर्थकों का विचार है कि राष्ट्रीय हितों व स्वार्थों का जन्म राष्ट्रीय शक्ति द्वारा होता है। इसलिये अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में प्रत्येक देश शक्ति प्राप्त करना चाहता है। शक्ति साधन भी है और साध्य भी। प्राय: प्रत्येक राष्ट्र शक्ति प्राप्त करना चाहता है, शक्ति प्रर्दशन करता है, शक्ति प्रयोग करता है तथा शक्ति में बढ़ोतरी चाहता है जिससे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति संघर्ष एक प्रमुख विशेषता बन जाती है। परंतु राज्य द्वारा अपार व असीमित शक्ति के प्रयोग से युद्ध छिड़ सकता है और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अराजकता व अव्यवस्था फैल सकती है। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनेक ऐसे तत्वों की सहायता ली गई है जिनसे राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन होता है। राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले बाहरी तत्व है –

3.5.1 अंतर्राष्ट्रीय कानून

को भी अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले बाहरी तत्व है। अंतर्राष्ट्रीय कानून एक ऐसी व्यवस्था है जिसके नियमों को राष्ट्र-राज्यों ने स्वीकार किया है और वे इसे मानने के लिये बाध्य ही हैं। इसी से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उनका व्यवहार नियंत्रित होता है किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति पर अंतर्राष्ट्रीय कानून का महत्वपूर्ण अंकुश हैं। अंतर्राष्ट्रीय परस्पर व्यवहार में जो देश लगे हुये हैं यह

कानून उनके व्यवहार को नियंत्रित करता है और उन्हें निर्देशित देता है। युद्ध व शांति में सुचारु रुप से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को चलाने के लिये अंतर्राष्ट्रीय कानून एक कानूनी ढांचा है।

3.5.2 **अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता**

अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले तीसरा बाहरी तत्व है। जिस प्रकार समाज में मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये कुछ नैतिक नियम होते हैं। उसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में राज्यों के व्यवहार को परिसीमन करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता होती है। शांति, व्यवस्था, समानता, अच्छाई, आपसी सहयोग, सभी लोगों के जीवन और उनकी स्वतंत्रता की समानता ऐसे मूल्य हैं जिन्हें प्रत्येक राज्य को एक अधिकार अथवा अच्छे मूल्य के रुप में स्वीकार कर लेना चाहिये और उनको व्यावहारिक रुप देना चाहिये। अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता व्यवहार की ऐसी नैतिक संहिता है जिसका पालन प्राय: सभी देश अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में करते हैं। यह नैतिक भावना प्रत्येक देश की राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन करने वाला एक तत्व बनती है।

3.5.3 **विश्व जनमत**

अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाला चौथा तत्व है। विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार क्रांति ने समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक संगठित व शक्तिशाली विश्व जनमत को जन्म दिया है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में यह एक महत्वपूर्ण तत्व बनकर उभरा है। संसार में शांति आंदोलन, परमाणु शस्त्रों का नियंत्रण के लिये आंदोलन, पृथ्वी के वातावरण संतुलन की सुरक्षा के लिये शक्तिशाली व स्वस्थ्य वातावरण आंदोलन तथा ऐसे ही अनेक दूसरे आंदोलन हैं जिनसे विश्व जनमत के अस्तित्व का पता चलता है। राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन करने के लिये यह एक बड़ी तेज़ी से उभरती हुई शक्ति है। विपरित जनमत के डर से कई बार किसी देश को किसी विशेष नीति का अनुसरण करना छोड़ना पड़ता है। वैसे विश्व जनमत की अपनी कुछ सीमाएँ हैं, यह अक्सर शक्तिशाली व आक्रमक राष्ट्रवाद की भावना से लोहा लेने में असमर्थ हो जाता है।

3.5.4 **अंतर्राष्ट्रीय संगठन**

किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने में अंतर्राष्ट्रीय संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1919 से लेकर आजतक एक विश्व संस्था विद्यमान रही है। 1945 से संयुक्त राष्ट्र संघ कार्यरत है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लगभग सभी देश संगठन के सदस्य हैं। इसके चार्टर में कुछ उद्देश्यों की चर्चा की गई है जिन्हें प्राप्त करने के लिये एक सदस्य देश वचनबद्ध हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को शांतिमय व व्यवस्थित तरीके से चलाने के लिये एक भूमंडलीय मंच है। खाड़ी देश के बाद सोवियत संघ के विघटन के बाद तथा शीतयुद्ध की समाप्ति के काल में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका में एक सकारात्मक परिवर्तन हुआ है तथा यह संस्था और अधिक सक्रिय हो गई है।

3.5.5 **सामूहिक सुरक्षा**

किसी देश की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने में सामूहिक सुरक्षा एक महत्वपूर्ण तत्व के रुप में स्थित है। सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था शक्ति प्रबंधन का एक अंतर्राष्ट्रीय साधन है और यह भी राष्ट्र शक्ति पर अंकुश रखती है। सामूहिक सुरक्षा अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के उद्देश्य के सिद्धांत पर आधारित है। सामूहिक सुरक्षा सिद्धांत के अंतर्गत किसी एक राष्ट्र की सुरक्षा का सवाल सभी से जुड़ा होता है।

3.5.6 **नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण**

किसी देश की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने में नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण को रखा जाता है। सैनिक शक्ति राष्ट्रीय शक्ति का एक बड़ा आयाम है इसलिये शस्त्रीकरण इसका अपरिहार्य भाग है। नि:शस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियंत्रण को राष्ट्रीय शक्ति के परिसीमन के लिये एक विधि माना जाता है। शस्त्र नियंत्रण का अर्थ है शस्त्र दौर पर अंकुश लगाना विशेषतया परमाणु शस्त्रों की दौर को अंतर्राष्ट्रीय निर्णयों, नीतियों व योजनाओं द्वारा रोकने का यत्न करना। शस्त्र नियंत्रण तथा नियंत्रण की दिशा में जितनी सफलता मिलेगी उतना ही राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन हो सकेगा।

3.6 सारांश

समग्र रुप से देखा जा सकता है कि राष्ट्रीय शक्ति किसी भी अंतर्राष्ट्रीय देश में संलग्न राष्ट्रों के बीच आपसी प्रर्तिस्पर्धा को बढ़ाने का महत्वपूर्ण कारक होता है। परंतु यह बात महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय शक्ति को प्राप्ति करने संबंधी बहुत सारे तत्व हैं मसलन भूगोल, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या, तकनीक विचारधारा, राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय मनोबल, नेतृत्व। स्पष्ट है कि इन सभी शक्तियों के तत्व के साथ-साथ बहुत सारे अन्य तत्व भी होते हैं जो राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने के लिये कारगर होते हैं। शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, वैश्विक जनमत संग्रह आदि महत्वपूर्ण हैं। समग्र रुप से आज के बदलते वैश्विक युग में शक्ति के संबंध में बहुत सारे कारक उपलब्ध होते हैं। इनमें से कुछ कारक बहुत महत्वपूर्ण व अपरिहार्य होते हैं वहीं कुछ कारक थोड़ा कम महत्वपूर्ण। परंतु सभी कारक कहीं ना कहीं काफी महत्वपूर्ण व प्रासंगिक माने जाते हैं। आज के वैश्विक ग्राम कीदुनियाँमें राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा के बदलते स्वरुप की मीमांसा बहुत जटिल परंतु रोचक है। आज के समय राजनीतिक युद्ध के स्थान पर विज्ञान व तकनीकी प्राधान्यता देखने को मिलती है। आज राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार के लिये मिडिल किंग्डम जैसी विस्तारवादी मान्यता के स्थान पर विकासवादी मान्यता पर बल दिया जा रहा है। अतएव कोई भी राष्ट्र आज शक्ति को यदि प्राप्त करना चाहता है उसे विज्ञान व तकनीकी रुप से शक्तिशाली व समृद्ध होना चाहिये। समकालीन समय में शक्ति के विकासवादी परिप्रेक्ष्यों को शामिल करते हुये कोई भी राष्ट्र आज विकास के चरम पर पहुँच सकता है। इसलिये यदि विश्व व्यवस्था में समतामूलक विकास को अंदाज देना हो, प्रगति व उन्नति के क्षेत्र में नया इतिहास लिखना हो तो ऐसे मुल्क के लिये शक्ति का वरण करना अपरिवार्य ही नहीं अनिवार्य होगा।

3.7 शब्दावली

शक्ति संघर्ष – अंतराष्ट्रीय राजनीति में शक्ति संघर्ष एक अनिवार्य सच्चाई के रुप में प्रतीत होती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रतिष्ठा, पैठ वअन्तर्राष्ट्रीयबिरादरी में अपना दबदबा बनाने के लिये इसका प्रयोग करता है।

शक्ति संतुलन – शक्ति संतुलन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शक्ति प्रबंधन व शक्ति परिसीमन होता है। इसके अंतर्गत अनुचित रुप से शक्तिशाली साधनों के प्रयोग की अनुमति नहीं होती है।

अंतर्राष्ट्रीय कानून –अन्तर्राष्ट्रीयकानून एक ऐसी व्यवस्था को बहाल करता है जिसके नियमों को राष्ट्र- राज्यों ने स्वीकार किया है और वे इसको मानने के लिये बाध्य होते हैं। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति परअन्तर्राष्ट्रीयकानून का महत्वपूर्ण अंकुश होता है।

अंतराष्ट्रीय नैतिकता- कानून के अलावा नैतिकता भी मानवीय व्यवहारों को नियंत्रित व निर्देशित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह राज्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करने का काम करता है। नैतिक भावना जबअन्तर्राष्ट्रीयस्तर पर प्रवेश करती है तब यह विश्व बंधुत्व को बहाल करने का काम करती है।

विश्व जनमत- विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार क्रांति ने समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक संगठित व शक्तिशाली विश्व जनमत को जन्म दिया है।

3.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 **संदर्भ ग्रन्थ**

1.मार्गेंथाऊ, हैन्स (1960), *पॉलिटिक्स अमोंग नेशन*, मैकमिलन-हिल ह्युमेनिटिज़।

2.ऑरगेन्सकी (1958), *वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया।

3.फाड़िया, बी.एल (2008), *अंतर्राष्ट्रीय राजनीति*, साहित्य भवन पब्लिकेशन : आगरा

3.10 **सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री**

1.एंड्रयु, हैवुड (2011), *ग्लोबल पॉलिटिक्स*, पेलग्रेव मैकमिलन।

2.हंटिगटन (1919), *वर्ल्ड पावर एण्ड इवोल्यूशन*, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेवेन।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.राष्ट्रीय शक्ति के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुये इसके प्रमुख तत्वों को स्पष्ट करें | इसको सीमित करने संबंधी तत्व को रेखांकित करें?

ईकाई-4 : राष्ट्रीय शक्ति के तत्व,बदलते स्वरुप

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 राष्ट्रीय शक्ति के तत्व

4.3.1 भूगोल

4.3.2 संसाधन

4.3.3 आबादी

4.3.4 तकनीक

4.3.5 राष्ट्रीय मनोबल

4.3.6 कूटनीति

4.3.7 शासन का गुण

4.3.8 नेतृत्व

4.3.9 विचारधारा

4.3.10 इंटेलिजेंस

4.3.11 आर्थिक विकास व औद्योगिक क्षमता

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

4.7 संदर्भ ग्रंथ

4.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्यक्रम

4.9 निंबधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अंतराष्ट्रीय राजनीति को यदि गहनतापूर्वक विश्लेषण करें तो स्पष्ट है कि यर्थाथ रुप में नि:संदेह यह राज्यों के बीच शक्ति-संघर्ष के इर्द-गिर्द परिक्रमा करती है। शक्ति उन मूल्यों व हितों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है जिन्हें राष्ट्र बनाए रखना तथा बढ़ाना चाहते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को सीमित करने वाला भी तत्व के रुप में देखा जाता है क्योंकि प्रत्येक राज्य अपने संसाधनों व सामर्थ्य व साथ-साथ दूसरे राष्ट्रों की शक्ति द्वारा सीमित होता है जो कि इच्छित लक्ष्यों की प्राप्त में रुकावट उत्पन्न करता है। एक बड़े स्थूल अर्थ में 'राष्ट्रीय शक्ति या शक्ति एक ऐसी सामर्थ्य या योग्यता है जिसके अंतर्गत दूसरों को नियंत्रित करने, उससे अपना मनचाहा व्यवहार कराने व उससे अपने मनचाहा व्यवहार करने से रोकना है'। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये होलस्टी ने कहा है 'राष्ट्रीय शक्ति दरअसल राज्य की सामान्य क्षमता है जिसके अंतर्गत वह राज्य दूसरे राज्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करता है' (on the general capacity of states to control the behavior of others.) इसी को और व्यवस्थित तरीके से स्पष्ट करते हुये वी.वी डाईक ने राष्ट्रीय शक्ति को बलपूर्वक क्रिया में देखा है। डाईक के अनुसार, 'शक्ति इच्छा से माने गये प्रभाव से अलग बलपूर्वक मनवाया गया प्रभाव है' (Coercive, influence, distinguished from persuasive influence.) गौरतलब है कि राष्ट्रीय शक्ति को संघर्ष के रुप में रेखांकित करते हुये मॉरगेन्थाऊ ने कहा है कि शक्ति दो राजनीतिक इकाईयों के मध्य संबंधों की प्रतीक है। उसका अभिप्राय यह है कि एक राज्य यानि A के पास इतनी क्षमता होती है कि वह B के कार्यकलापों को नियंत्रित कर सके। इसी को और व्यवस्थित रुप से परिभाषित करते हुये वह लिखते हैं कि शक्ति एक व्यक्ति की वह सामर्थ्य है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क व कार्यों को नियंत्रित करता है (man's control over the minds and action of other men.)

4.2 उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति को प्राप्त करने की चाह व इच्छा किसी राष्ट्र का परम उद्देश्य के रुप में देखा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र अधिकाधिक शक्ति विस्तार, उसका प्रर्दशन व उसकी अभिवृद्धि का प्रयास करता है। अपनी शक्ति को अधिकाधिक विस्तार देने के लिये कई बार कई राष्ट्र दूसरे पर अपनी इच्छा का आरोपीकरण भी करते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुये जार्ज श्वाजनबर्जर ने शक्ति को अपनी इच्छा का दूसरों पर आरोपीकरण तथा अपालन की स्थिति में प्रभावकारी क्षमता के रुप में देखा है। यही कारण है कि कई बार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को शक्ति के लिये संघर्ष के रुप में भी परिभाषित किया जाता है। शीतयुग काल तक ऐसा ही प्रतीत होता था कि कोई राष्ट्र केवल अपने शक्ति बढ़ाने के लिये राजनीतिक शक्ति का ही प्रयोग कर सकता है। परंतु 1990 के बाद सोवियत संघ के विघटन के उपरांत ऐसा लगा मानोंदुनियाँएक ध्रुवीय विश्व की ओर उन्मुख हो रही है। भूमंडलीय व सूचना तकनीकी क्रांति के बाद राष्ट्रीय शक्ति के स्वरुप में भी परिवर्तन आ रहा है।

21वीं सदी में वही देश शक्तिशाली बनने की चाह रखता है जो व्यापार-वाणिज्य के साथ-साथ सूचना तकनीकी क्रांति की नज़रिये से भी सर्वोच्च हो।

4.3 राष्ट्रीय **शक्ति के तत्व**

शक्ति के अनेक अवयव या तत्व हैं, मोटे तौर पर इन अवयवों को शक्ति के निर्धारक तत्व भी कहा जाता है, परंतु ऐसा कहना पूर्णतया सत्य नहीं होगा। कारण यह है कि ये अवयव शक्ति का निर्धारण नहीं करते शक्ति का निर्धारण तो शक्ति के अवयवों के कुशलतापूर्वक उपयोग से संभव होता है। जो भी राष्ट्र इन अवयवों का कुशलतापूर्वक, दक्षतापूर्वक व कूटनीतिपूर्वक प्रयोग करता है वह विश्व राजनीति में अपना परचम लहराता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शक्ति के प्रमुख अवयव या तत्व निम्नलिखित है-

4.3.1 **भूगोल** –

भूगोल से संबद्ध विशेषज्ञों का मानना है कि राष्ट्रीय शक्ति का मूल तत्व भूगोल है। किसी भी राष्ट्र की शक्ति की जड़ उसके भूगोल में निहीत होती है। भूगोल ऐसा तत्व है जिसे चाहकर भी कोई राष्ट्र परिवर्तित नहीं कर सकता है यह आपको पहले से प्राप्त होता है। गौरतलब है कि भूगोल से तात्पर्य किसी देश का क्षेत्रफल, जलवायु, स्थलाकृति व उसकी अवस्थिति में निहित है।

क्षेत्रफल की वृद्धि होने से किसी देश की शक्ति में वृद्धि होती है क्योंकि बड़ा क्षेत्र वाला राष्ट्र अधिक आबादी संभाल सकता है। वेटिकन सिटी, इंडोनेशिया जैसे देश कभी महाशक्ति नहीं बन सकते हैं क्योंकि यह बहुत छोटे देश हैं। क्षेत्रफल बड़ा होने से सैनिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकती है जिससे राष्ट्र की शक्ति बढ़ती है। क्षेत्रफल बड़ा होने के कारण ही रुस में नेपोलियन और जापान की सेना को भी चीन में मात खानी पड़ी थी। युद्ध के समय बड़ा देश पीछे हट आने के बाद भी बाकी बचे क्षेत्र में शक्ति संग्रह करके जवाबी हमले की तैयारी कर सकता है। क्षेत्रफल के बड़ा होने का एक फायदा यह भी है कि राष्ट्र अपने उद्योगों को सीमांतों से दूर रख सकता है जिससे विदेशी हमलों का प्रतिरोध किया जा सकता है।

जलवायु राष्ट्रीय शक्ति की उत्पत्ति का एक और महत्वपूर्ण भौगोलिक तत्व है। ज़ाहिर है कि किसी राष्ट्र की महाशक्ति बनने ना बनने के पीछे उसका जलवायु महत्वपूर्ण रुप से जिम्मेदार होता है। स्पष्ट रुप से दक्षिणी ध्रुव व सहारा का रेगिस्तान शक्ति की अभिवृद्धि के लिये उपयुक्त प्रदेश नहीं है। सामान्य रुप से यह धारणा है कि ऊष्ण कटिबंध के सब प्रदेश और रेगिस्तानी इलाके शक्ति बनने की संभावनाओं से वंचित रहते हैं, परंतु विशेष अर्थों में रेगिस्तानी इलाके शक्ति के नज़रिये से महत्वपूर्ण बन गये हैं क्योंकि रेगिस्तानों में यूरेनियम युक्त खनिज़ मिलते हैं और यूरेनियम परमाणु अस्त्र बनाने के लिये आवश्यक है। प्रमुख शक्ति बनने के लिये शीतोष्ण जलवायु का होना जरुरी है क्योंकि जलवायु

से ही लोग उस प्रकार के कामों में लगते हैं जो किसी आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र के लिये आवश्यक है।

स्थलाकृति, भौगोलिक तत्व जो किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति के वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखता है अपने गर्भ में स्थलाकृति को भी समेटे हुये हैं। स्थलाकृति की भूमिका जलवायु से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है जिससे राष्ट्रों के बीच की प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण होता है और इस प्रकार उनके प्राकृतिक फैलाव की अधिकतम सीमा निश्चित हो जाती है नदियों, पर्वतों या समूहों से घिरे हुये राष्ट्र उन देश देशों से अधिक सुरक्षित होते हैं जिनकी सीमाएँ प्राकृतिक नहीं है, जिन राष्ट्रों के मध्य पर्वत या नदी या समुद्र के ज़रिये प्राकृतिक सीमा रेखा होती है उनमें प्राय: सीमा संबंधी विवाद नहीं होते हैं। स्थलाकृति की विशेषता को राष्ट्रों के संदर्भ में आंक सकते हैं। पेरेनीज़ पर्वत श्रृंखला के कारण किस प्रकार स्पेन यूरोप के राजनीतिक व फौज़ी विवादों की लपेट से परे रहा उसी प्रकार इंग्लिश चैनल ने ब्रिटिश को काफी लंबी समय तक सुरक्षा प्रदान की इसी क्रम में अटलांटिक व प्रशांत महासागर ने अमेरिका व आल्पस पर्वत श्रृंखलाओं ने इटली को सुरक्षा प्रदान की।

अवस्थिति, भौगोलिक तत्व के अंतर्गत अवस्थिति का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। अवस्थिति का नीति पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इससे शक्ति पर ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय हित के स्वरुप पर भी असर पड़ता है। अवस्थिति और विदेश नीति का आपसी संबंध इतना बुनियादी है कि इससे भू-राजनीति का जन्म हुआ है जो यह मानती है कि किसी राज्य की अभिवृद्धि का प्रतिरुप या ढ़र्रा उसके भूगोल पर निर्भर करता है। अमेरिका की अवस्थिति स्थल विस्तार और समुद्रों की दृष्टि से ऐसी है कि इन दोनों से वह स्थल व समुद्री शक्ति बना है। कभी-कभी अवस्थिति के कारण ही किसी देशा का सामरिक महत्व बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये ग्रीनलैण्ड व ओकिनावा का सामरिक महत्व अधिक है क्योंकि अमेरिका वहाँ ऐसा सैनिक अड्डा स्थापित करना चाहता है जहाँ से वह अपने संभावी शत्रुओं पर आसानी से बंबारी कर सके। इसी प्रकार सोवियत संघ व चीन का पड़ोसी होने के कारण ही भारत को गुटनिरपेक्षता की नीति अपनानी पड़ी। परंतु कभी-कभी भौगोलिक स्थिति कुछ राज्यों के लिये हानिकारक भी होती है जैसे स्वेज नहर के महत्वपूर्ण जलमार्ग के निकट अवस्थित होने के कारण मिस्त्र पर ग्रेट ब्रिटेन ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

4.3.2 **संसाधन**-

प्राकृतिक संसाधन भी राष्ट्रीय शक्ति का एक महत्वपूर्ण अवयव या तत्व है। चाहे वह शक्ति प्राकृतिक हो या कृत्रिम। आधुनिक सैनिक बल के लिये अनेक प्रकार के कच्चे सामान की जरुरत होती है। अरब के देशों के उदाहरण से यह पता चल सकता है कि शक्ति के प्रसंग में प्राकृतिक संपदा का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। महाशक्तियाँ उसका लिहाज़ तेल संपदा के कारण करती है इसी प्रकार अर्जेंटीना के गोमांस व श्रीलंका की रबड़ का ध्यान रखकर ही अन्य राष्ट्रों को उनके साथ

अपने संबंध बनाने पड़ते हैं। राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण पर सबसे सीधा प्रभाव डालने वाली तीन प्राकृतिक वस्तुएँ है लोहा, कोयला व तेल (पेट्रोल)। यहाँ यह भी बताना महत्वपूर्ण है कि प्राकृतिक संपदा के होने मात्र से शक्ति प्राप्त नहीं हो सकता है इस संपदा का विकास केन्द्रित होना चाहिये व इसके स्वामी का इसकी ब्रिकी आदि पर कठोर नियंत्रण होना चाहिये। कुल जमा जबतक इन प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन व इस्तेमाल नहीं किया जायेगा तब तक यह किसी भी राष्ट्र की क्षमता व शक्ति को बढ़ाने में बहुत अधिक कारगर नहीं होगा।

4.3.3, **आबादी**-

आबादी शक्ति का एक और महत्वपूर्ण प्राकृतिक अवयव है यदि यूरोपीय आधुनिक इतिहास पर नज़र डाले तो स्पष्ट है कि यूरोप की राजनीति में जिन देशों का सबसे अधिक महत्व रहा है जिन्हें शक्तिशाली स्थिति प्राप्त हुई है वे सब आबादी के लिहाज़ से काफी घनी थे। मुसोलिनी ने इटलीवासियों से आबादी बढ़ाने का आग्रह करते हुये कहा था 'बात साफ-साफ सोचना ही ठीक होगा। नौ करोड़ जर्मनों व बीस करोड़ स्लावों के सामने चार करोड़ इटालियनों की क्या हस्ती है'। परंतु यहाँ आबादी का आशय सक्रिय व जबावदेह आबादी से है। निष्क्रिय व गैर जिम्मेदार आबादी किसी राष्ट्र के लिये कई बार मुसिबत ही बन जाती है।

बड़ी आबादी का एक महत्वपूर्ण उपयोग सैनिक कार्यवाही में और आर्थिक उत्पादन में जनशक्ति के रुप में किया जा सकता है। कोरिया व हिंदचीन के युद्धों से यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि अब भी पैदल सेना के स्थान की पूर्ति और किसी चीज से नहीं की जा सकती है। यहाँ यह बात ध्यान देना आवश्यक है कि यदि किसी राष्ट्र के पास अपार जन शक्ति हो पर सैनिक संगठन में बंधी न हो तो इससे उसकी राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि नहीं हो सकती है। यदि किसी राष्ट्र के आर्थिक उत्पादन का परिणाम अनेक कारकों में से इस कारक पर भी निर्भर करता है कि देश के पास श्रमिक बल या मजदूर दल कितना है जो ठीक अर्थव्यवस्था के लिये सर्वथा आवश्यक है। मॉरगेन्थाऊ लिखते हैं कि घनी आबादी के बिना यह असंभव है कि आधुनिक युद्धों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिये आवश्यक औद्योगिक कारखाने निर्मित व संचालित किये जा सकें और न यह संभव है कि बड़ी संख्या में लड़ने वाले सिपाहियों की टुकरियाँ स्थल, जल व वायु में लड़ने के लिये प्रस्तुत की जाये।

4.3.4 **तकनीक**

राष्ट्रीय शक्ति को वृद्धि करने वाले प्रमुख तत्व के रुप में तकनीक का महत्वपूर्ण स्थान है। तकनीक या प्रोद्योगिकी के अंतर्गत आविष्कार से जुड़े सभी साधन आते हैं जिनसे राष्ट्र की भौतिक समृद्धि में सहायता मिलती है। क्विन्सी राइट के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रशिक्षण के रुप में तकनीकी ज्ञान वह विज्ञान है जो अविष्कार और भौतिक संस्कृति की प्रगति को विश्व राजनीति से संयुक्त करता है। यह यांत्रिक पद्धतियों के विकास तथा युद्ध-कूटनीति, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, यात्रा व संसार में उनके

प्रयोग की कला है। स्पष्ट है कि चिरकाल से ही तकनीक ने राष्ट्रीय शक्ति की स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और यह माना जाता है कि तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से एक राष्ट्र जितना आगे बढ़ जाता है वह उतना ही शक्ति की नज़रिये से भी आगे आ जाता है। यहाँ यह देखना दिलचस्प होगा कि किस तरह से तकनीकी प्रगति के कारण ही संयुक्त राज्य अमेरिका और रुस की गणना संसार के महाशक्तियों में होती रही है। गौरतलब है कि तकनीकी प्रगति के अंतर्गत प्रमुख रुप से सैनिक तकनीक, औद्योगिक तकनीक व संचार तकनीक आता है।

4.3.5 **राष्ट्रीय मनोबल**

राष्ट्रीय मनोबल प्रमुख रुप से राष्ट्रीय शक्ति का एक महत्वपूर्ण तत्व है। किसी राष्ट्र के लोगों में राष्ट्र हित को व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखने की तत्परता के रुप में जो गुण होते हैं उन सबको मिलाकर राष्ट्रीय मनोबल कहा जा सकता है। इस गुण का प्रमुख अंश है बलिदान की तत्परता। इस तत्परता का किसी राष्ट्र की सेना पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। अफसरों का मनोबल और आम जनता का मनोबल दो सर्वथा भिन्न वस्तुएँ हैं पर किसी राष्ट्रीय संकट के समय संकट का मुकाबला करने के लिये बलिदान करने व मुकाबला करने की तत्परता आम जनता में होनी भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी सशस्त्र सेनाओं पर बलिदान की तत्परता युद्धकाल में ही नहीं बल्कि शांतिकाल में भी राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण करने में सहायक होती है। स्पष्ट है कि मनोबल को राष्ट्रीय चरित्र, संस्कृति, लोकप्रिय नेतृत्व, सुयोग्य सरकार व परिस्थिति काफी प्रभावित करती है।

4.3.6 **कूटनीति**

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में कूटनीति का महत्वपूर्ण स्थान है। मॉरगेन्थाऊ के अनुसार, किसी राष्ट्र की कूटनीति की उत्तमता इस बात पर निर्भर करती है कि यह तत्व कितना ही अस्थायी क्यों ना हो। गौरतलब है कि यदि मनोबल राष्ट्रीय शक्ति की आत्मा है तो कूटनीति उसका मस्तिष्क है। यदि कूटनीति का दृष्टिकोण दूषित है, उसके निर्णय गलत हैं उनके निश्चिय कमजोर हैं तो भौगोलिक स्थिति के तमाम लाभ, खाध्य पदार्थ, कच्चे माल, औद्योधिक उत्पादन की आत्म-निर्भरता, सैनिक तैयारी तथा आदमी के गुण व संख्या के लाभ में एक राष्ट्र के लिये कम योगदान दे पायेंगे। एक राष्ट्र जो कि इन लाभों पर गर्व कर सकता है, यदि उसकी कूटनीति चातुर्यपूर्ण नहीं है तो वह अपनी प्राकृतिक पूंजी के बल पर केवल क्षणिक सफलताएँ प्राप्त कर सकता है। ऐसे राष्ट्र को उस राष्ट्र के सम्मुख झुकना पड़ेगा जिसकी कूटनीति शक्ति दक्ष व पूर्ण है। अपने राष्ट्र की शक्ति संभावनाओं का पूर्ण लाभप्रद करके एक योग्य कूटनीति अपने राष्ट्र की शक्ति उस सीमा से अधिक बढ़ा सकती है जितना अन्य तत्वों के समन्वय के पश्चात कोई आशा कर सकता है। उत्तम श्रेणी की कूटनीति वैदेशिक नीति के लक्ष्य तथा साधन कर राष्ट्रीय शक्ति की उस सीमा से कहीं अधिक बढ़ा सकती है, जितना की कोई अन्य तत्वों से शक्ति वृद्धि के बारे में कतई नहीं सोच सकता है।

4.3.7 शासन के गुण

राष्ट्रीय शक्ति की अभिवृद्धि में राज्य में शासन का गुण यानि चरित्र कैसा है इस बात का भी काफी फर्क पड़ता है। हालांकि यह हमेशा से विवादास्पद रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिये कौन सी प्रणाली अधिक उत्तम है। लोकतंत्रीय और एकाधिकारवादी दोनों ही प्रणाली को अन्य राज्यों के व्यवहार पर कारगर प्रभाव डालने में सफलता मिली है और इसलिये अपनी-अपनी सफलता की दृष्टि से दोनों प्रकार के राष्ट्र शक्तिशाली रहे हैं। अलबत्ता शासन का स्वरुप चाहे कुछ भी हो, परंतु राष्ट्रीय शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि राष्ट्र में सुशासन है अथवा नहीं।

4.3.8 नेतृत्व

राष्ट्रीय शक्ति का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व नेतृत्व है। राष्ट्र को दृढ़ करने के लिये प्राकृतिक साधनों, कच्चे माल, तकनीक, औद्योगिक क्षमता, सैनिक शक्ति तथा विचारधारा का उपयोग उस नेतृत्व पर निर्भर करता है जो राज्य की सरकार चलाता है। सैनिक व असैनिक योजनाएँ बनाना राजनीतिक नेताओं का काम है। विदेश नीति का निर्माण व उसे कार्यान्वित करने का उत्तदायित्व विशेष रुप से निर्णय निर्माताओं का काम है। नेतृत्व के मुख्य रुप से दो कार्य हैं जिनसे वह राष्ट्रीय शक्ति की अभिवृद्धि में सहायक होता है। प्रथम, नेतृत्व राष्ट्रीय शक्ति के अन्य तत्वों के बीच समन्वय की स्थापना करता है, दूसरा, राष्ट्र अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त कर सके इसके लिये भी उच्च गुणों वाले नेतृत्व का अस्तित्व आवश्यक होता है। स्पष्ट है कि नेतृत्व का स्पष्ट रुप से युद्ध काल में देखा जा सकता है। युद्ध काल में कुशल नेतृत्व निर्देशन व युद्ध नीति निर्माण का विशेष ध्यान रखता है। खाद्य सामग्री के भंडारों का संरक्षण, औद्योगिक कच्चे माल की रक्षा, राष्ट्रीय मनोबल को बढ़ाने आदि कार्य करने होते हैं। स्पष्ट रुप से ऐसे कार्यों का निष्पादन कुशल नेतृत्व द्वारा ही होता है। स्पष्ट रुप से शांतिकाल में भी देश में राजनीतिक नेतृत्व का अच्छा खासा महत्व होता है। शांतिकाल में सभी प्रकार की व्यवस्था सुचारु रुप से गतिवान बनी रहे यह कुशल नेतृत्व पर ही टिका होता है।

4.3.9 विचारधारा

राष्ट्रीय नेतृत्व के महत्वपूर्ण तत्व के रुप में विचारधारा का प्रमुख स्थान होता है। विचार व विचारधारा एक राज्य की शक्ति के तत्व रहे हैं। सरकार की जो विचारधारा होती है वह एकता व लोगों के समर्थन का साधन होती हैं। साम्यवाद की विचारधारा साम्यवादी राष्ट्रों के 1947 से 1989 के बीच शक्ति का साधन बनी रही। विचारधारा के द्वारा ही वे विश्व स्तर पर अपने प्रभुत्व का विकास व विस्तार कर सकता है। विचारधारा देश में रहने वाले लोगों व देश के बाहर रहने वालों के लिये एकता का साधन होती है। इसी तरह लोकतांत्रिक समाजवाद को अपनाकर भारत पश्चिमी लोकतंत्र व समाजवाद समर्थकों के साथ सहयोग व मैत्री का संबंध कायम कर सकता है।

4.3.10 इंटेलिजेन्स

राष्ट्रीय शक्ति का एक प्रमुख तत्व इंटेलिजेन्स भी है। आसूचना यानि इंटेलिजेन्स उस कार्य का नाम है जिससे विदेशी मामलों के बारे में सरकारी निर्णय समझदारी व दूरदर्शिता से किया जा सके। सच पूछा जाये तो सब शक्ति का प्रकार है। विशेष रुप से युद्ध के समय इसका काफी महत्व होता है। जब दुश्मन के हमले के समय हमले के स्थान तथा उसकी प्रबलता के बारे में पूर्व जानकारी हो तो विजय की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार शत्रु की किसी खास कमजोरी का ज्ञान भी सहायक हो सकता है।

4.3.11 आर्थिक विकास व औद्योगिक क्षमता

राष्ट्रीय शक्ति के अवयवों में यह महत्वपूर्ण स्थान रखता है जहाँ तक आर्थिक विकास का संबंध हैं किसी राष्ट्र की शक्ति का आधार उसका आर्थिक संगठन यानि उसके उद्योग विस्तार की मात्रा होती है। किसी देश की प्राकृतिक साधन संपदा से उसकी शक्ति में वृद्धि उसी हालत में हो सकती है। जब उन साधनों का पूरी तरह विकास किया जाये। विकास का यह प्रश्न प्रोधोगिकी और आर्थिक संगठन के विषय से सीधा जुड़ा हुआ है। इस संगठन का बड़ा आवश्यक तत्व यह है कि किसी उद्योग बहुल देश के पास अपने उपभोग की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर सकने की क्षमता हो। दूसरे शब्दों में, उनके पास फालतू संसाधन होना चाहिये। संतोषजनक आर्थिक संगठन वाला राज्य शक्ति की अनेक विधि का उपयोग कर सकता है जैसे पुरस्कार देना, अपने ऊँचे स्तर से अनुनय की शक्ति बढ़ने के कारण दूसरों पर अनुनय द्वारा प्रभाव डालना।

4.4 सारांश

समग्र रुप से देखा जा सकता है कि राष्ट्रीय शक्ति किसी भी अंतर्राष्ट्रीय देश में संलग्न राष्ट्रों के बीच आपसी प्रर्तिस्पर्धा को बढ़ाने का महत्वपूर्ण कारक होता है। परंतु यह बात महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय शक्ति को प्राप्ति करने संबंधी बहुत सारे तत्व हैं मसलन भूगोल, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या, तकनीक विचारघारा, राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय मनोबल, नेतृत्व। स्पष्ट है कि इन सभी शक्तियों के तत्व के साथ-साथ बहुत सारे अन्य तत्व भी होते हैं जो राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने के लिये कारगर होते हैं। शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, वैश्विक जनमत संग्रह आदि महत्वपूर्ण हैं। समग्र रुप से आज के बदलते वैश्विक युग में शक्ति के संबंध में बहुत सारे कारक उपलब्ध होते हैं। इनमें से कुछ कारक बहुत महत्वपूर्ण व अपरिहार्य होते हैं वहीं कुछ कारक थोड़ा कम महत्वपूर्ण। परंतु सभी कारक कहीं ना कहीं काफी महत्वपूर्ण व प्रासंगिक माने जाते हैं। आज के वैश्विक ग्राम कीदुनियाँमें राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा के बदलते स्वरुप की मीमांसा बहुत जटिल परंतु रोचक है। आज के समय राजनीतिक युद्ध के स्थान पर विज्ञान व तकनीकी प्राधान्यता देखने को मिलती है। आज राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार के लिये मिडिल किंग्डम जैसी विस्तारवादी मान्यता के

स्थान पर विकासवादी मान्यता पर बल दिया जा रहा है। अतएव कोई भी राष्ट्र आज शक्ति को यदि प्राप्त करना चाहता है उसे विज्ञान व तकनीकी रुप से शक्तिशाली व समृद्ध होना चाहिये। समकालीन समय में शक्ति के विकासवादी परिप्रेक्ष्यों को शामिल करते हुये कोई भी राष्ट्र आज विकास के चरम पर पहुँच सकता है। इसलिये यदि विश्व व्यवस्था में समतामूलक विकास को अंदाज देना हो, प्रगति व उन्नति के क्षेत्र में नया इतिहास लिखना हो तो ऐसे मुल्क के लिये शक्ति का वरण करना अपरिवार्य ही नहीं अनिवार्य होगा।

4.5 **शब्दावली**

शक्ति संघर्ष – अंतराष्ट्रीय राजनीति में शक्ति संघर्ष एक अनिवार्य सच्चाई के रुप में प्रतीत होती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रतिष्ठा, पैठ वअन्तर्राष्ट्रीयबिरादरी में अपना दबदबा बनाने के लिये इसका प्रयोग करता है।

शक्ति संतुलन – शक्ति संतुलन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शक्ति प्रबंधन व शक्ति परिसीमन होता है। इसके अंतर्गत अनुचित रुप से शक्तिशाली साधनों के प्रयोग की अनुमति नहीं होती है।

अंतर्राष्ट्रीय कानून –अन्तर्राष्ट्रीयकानून एक ऐसी व्यवस्था को बहाल करता है जिसके नियमों को राष्ट्र- राज्यों ने स्वीकार किया है और वे इसको मानने के लिये बाध्य होते हैं। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति परअन्तर्राष्ट्रीयकानून का महत्वपूर्ण अंकुश होता है।

अंतराष्ट्रीय नैतिकता- कानून के अलावा नैतिकता भी मानवीय व्यवहारों को नियंत्रित व निर्देशित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह राज्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करने का काम करता है। नैतिक भावना जबअन्तर्राष्ट्रीयस्तर पर प्रवेश करती है तब यह विश्व बंधुत्व को बहाल करने का काम करती है।

विश्व जनमत- विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार क्रांति ने समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक संगठित व शक्तिशाली विश्व जनमत को जन्म दिया है।

- क- राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले प्रमुख कारकों को लिखें
- ख- कूटनीति

क- राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले बहुत सारे कारक शामिल हैं। इसमें प्रमुख रुप से शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, विश्व लोक जनमत, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, सामूहिक सुरक्षा, नि:शस्त्रीकरण व अस्त्र नियंत्रण। शक्ति संतुलन अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में तनाव की स्थिति से उबाड़ने व शक्ति के प्रबंधन तथा परिसीमन पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय कानून, किसी भी राष्ट्र की शांतिकाल व युद्धकाल दोनों ही स्थितियों में एक व्यवस्था बनी रहे इसके लिये जरुरी होता है। इस

प्रकार यह कानून एक कानूनी ढांचा के रुप में होता है। इस कानून को नहीं मानने पर किसी भी राष्ट्र पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता समाज में नैतिकता पूर्ण व्यवहार को बनाये रखने के लिये अपरिहार्य है। अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता एक नैतिक पूर्ण व्यवहार को बहाल करने संबंधी नैतिक संहिता है। विश्व जनमत, विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार संबंधी नज़रियों को बढ़ाता है। राष्ट्रीय शक्ति को परिसीमन करने के लिये यह एक बड़ी तेजी से उभरती हुई शक्ति है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन, राष्ट्रीय शक्ति को परिसीमित करने के लिये काफी कारगार उपाय माना जाता है। इससे संबंधित महत्वपूर्ण संस्था है संयुक्त राष्ट्र संघ। इसके चार्टर में कुछ उद्देश्यों की चर्चा की गई है जिसको प्राप्त करने के लिये सभी देश वचनबद्ध रहते हैं। सामूहिक सुरक्षा भी राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने संबंधी महत्वपूर्ण तत्व है। सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था शक्ति प्रबंधन का एक अंतर्राष्ट्रीय साधन है और यह भी भी राष्ट्रीय शक्ति पर अंकुश रखती है। नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण किसी राष्ट्र की शक्ति को नियंत्रित करने से जुड़ी एक महत्वपूर्ण तत्व है।

ख- कूटनीति अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण रणनीति के रुप में प्रयोग किया जाता है। यदि मनोबल राष्ट्रीय शक्ति की आत्मा है तो कूटनीति उसका मस्तिष्क है। स्पष्ट है कि मॉरगेन्थाऊ के अनुसार, एक कुशल राजनय या कूटनीति जो शांति संरक्षण के लिये तत्पर है, अंतिम कार्य है कि वह अपने ध्येयों की प्राप्ति के लिये उपयुक्त साधनों को चुने। राजनय को तीन प्रकार के साधन प्राप्त होते हैं, अनुनय, समझौता व शक्ति की धमकी।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 **संदर्भ ग्रन्थ**

1.मार्गेंथाऊ, हैन्स (1960), *पॉलिटिक्स अमोंग नेशन*, मैकमिलन-हिल ह्युमेनिटिज़।

2.ऑरगेन्सकी (1958), *वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया।

3.फाड़िया, बी.एल (2008), *अंतर्राष्ट्रीय राजनीति*, साहित्य भवन पब्लिकेशन : आगरा

4.8 **सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री**

1.एंड्रयु, हैवुड (2011), *ग्लोबल पॉलिटिक्स*, पेलग्रेव मैकमिलन।

2.हंटिगटन (1919), *वर्ल्ड पावर एण्ड इवोल्यूशन*, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेवेन।

4.9, **निबंधात्मक प्रश्न**

1.राष्ट्रीय शक्ति के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुये इसके प्रमुख तत्वों को स्पष्ट करें व साथ-साथ इसको सीमित करने संबंधी तत्व को रेखांकित करें?

इकाई-5: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा की भूमिका

5.1 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 विचारधारा के अर्थ और प्रकृति

5.3 विचारधारा की महत्वपूर्ण परिभाषाएँ

5.3.1 राष्ट्रीय शक्ति के तत्त्व के रूप में विचारधारा की भूमिका

5.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा के लक्षण

1.3.3 विचारधारा के बारे में मार्गेंथाऊ के विचार

5.3.4 विभिन्न प्रकार की विचारधाराएँ

5.3.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा की भूमिका

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना:-

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा का विशेष प्रभाव तथा महत्त्व है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा को यथार्थवादी तत्त्व माना जाता है। क्योंकि विचारधारा राष्ट्रीय शक्ति को प्रेरित करता है। विचारधारा शान्तिपूर्ण है तब तो सामन्जस्य पैदा करती है अगर विचारधारा शान्तिपूर्ण नहीं है तो वह युद्ध की स्थिति पैदा करती है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध का प्रमुख कारण विचारधाराओं की टकराहट ही थी विचारधारा में वह शक्ति है जो भौतिक मानवीय दोनों तत्त्वों को झकझोर देती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा राष्ट्रीय तत्त्व के रूप में सभी राष्ट्रों का ताना बाना बुनती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अगर विचारधारा न होती तो किसी राष्ट्र के सम्बन्धों की कल्पना नहीं की जा सकती थी विचारधारा ही विदेश नीति को उभारने और छिपाने का आवरण है। विचारधारा के माध्यम से ही भावना कर्म का एक कार्यक्रम पेश किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सभी राष्ट्र अपने तात्कालिक लक्ष्य की प्राप्ति विचारधारा के माध्यम से ही करते है। इसीलिए मार्गेंथाऊ ने कहा कि कोई भी राष्ट्र यह कह दे कि उसे विचारधारा के बिना शक्ति की आवश्यकता है तो उस राष्ट्र सिद्धान्त और नीतियाँ निरर्थक हो जायेगी, क्योंकि विचारधारा के बिना किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति तय नहीं की जा सकती इसलिए विचारधारा का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

5.1 उद्देश्य:-

- विचारधारा का अर्थ समझ पायेंगे।
- विचारधारा के विभिन्न प्रकार समझ पायेंगे।
- विचारधारा पर मार्गेंथाऊ के विचार जान पायेंगे।
- विचारधारा के लक्षण समझ जायेंगे।
- विचारधारा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया जान पायेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा की क्या भूमिका है जान सकेंगे।
- विचारधारा पर विभिन्न विद्वानों की परिभाषाएँ जान पायेंगे।

5.2 विचारधारा के अर्थ और प्रकृति

आइडियोलॉजी जिसका हिन्दी में अर्थ है विचारधारा, विचारधारा शब्द का पहली बार प्रयोग 23 मई 1797 को एक फ्रेंच सिद्धान्तशास्त्री डेस्टुट डी ट्रेसी ने किया। इस शब्द से डेस्टुट डी ड्रेसी का अभिप्राय था कि विचारों के विज्ञान से था अर्थात ऐसे विज्ञान से जिसमें बिल्कुल नए सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का आधार हो। विचारधारा के बारे में इसकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता इसका कार्य विमुख स्वरूप है। प्रैस्टन किंग ने कहा है कि ''विचारधारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राजनीतिक विचारों के संगत प्रणाली के वास्तविक अनुप्रयोग के साथ सम्बन्ध होगा। अर्थात् दूसरे शब्द में व्यक्त किया जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा कार्य सम्बन्धित प्रणाली की ओर संकेत करता है। वही दूसरी तरफ इसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संरचनाओं और सम्बन्धों के समर्थन तथा विचारों का समुच्चय है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा एक प्रणाली है। विचारधारा का बौद्धिक निरूपण भी किया जा सकता है और विद्वानों के माध्यम से इसे प्रस्तुत भी किया जा सकता है।

5.3 विचारधारा की महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ

विभिन्न राजनीति शास्त्रियों ने विचारधारा के बारे में अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं जिसे निम्नलिखित परिभाषाओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

पैडलफोर्ड एवं लिंकन के अनुसार-''विचारधारा आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों तथा लक्ष्यों से सम्बन्धित विचारों का निकाय है। जो इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यों की योजना तैयार करती है।''

स्नाइडर एवं विल्सन ने लिखा है:-''एक विचारधारा जीवन समाज एवं शासन के प्रति निश्चित विचारों का वह समूह है जिसका प्रचार मुख्यतया योजनाबद्ध सामाजिक राजनीतिक धार्मिक नारों के प्रतिपादन के रूप में अथवा युद्धकालीन नारों के रूप में निरन्तर उपदेशात्मक रूप इस प्रकार किया गया है कि वह एक विशिष्ट समाज, समुदाय, दल अथवा राष्ट्र के विशिष्ट विश्वास ही बन गए हैं।''

रोजर ईटवैल व एन्थोनी राइट के अनुसार ''राजनीतिक विचारधारा तथ्यपरक व मानपरक आस्थाओं व चिन्तन की अपेक्षाकृत सुमेल समुच्चय है जो मानव की प्रकृति मानव की समस्याएँ, इतिहास की प्रक्रिया तथा सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालती है।''

नोअल ओ सलीवान ने लिखा है कि विचारधाराओं में सदैव कोई न कोई क्रियात्मक तत्त्व संलिप्त होता है, औपचारिक राजनीतिक अन्य शब्दों में प्रक्रिया सम्बन्धी दशाओं को कार्यात्मक नहीं माना जाता अतः लोकतंत्र को भी विचारधारा के रूप में नहीं देखा जा सकता है।

चार्ल्स श्लाइचर के अनुसार ''विचारधारा व्यक्ति में अमूर्त विचारों की व्यवस्था है। ये विचार वास्तविकता को स्पष्ट करते है तथा तथ्यात्मक लक्ष्यों को स्पष्ट करते है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था

प्राप्ति करने अथवा बनाए रखने का प्रयास करते है। जिसमें उनके विश्वास के अनुसार लक्ष्यों को श्रेष्ठ रूप में स्वीकार किया जा सके और विभिन्न राष्ट्र समान विश्वास, दृष्टिकोण व राजनीतिक जीवन के समान लक्ष्यों के कारण चुनौती मिलने पर संगठित हो जाते है।''

5.3.1 राष्ट्रीय शक्ति के तत्त्व के रूप में विचारधारा की भूमिका

विचारधारा राष्ट्रीय शक्ति का तत्त्व है। आज सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति विचारधारा के आधार पर ही लोकतान्त्रिक और साम्यवादी गुटों में विभाजित है। विचारधारा लोगों को जोड़ने का काम करती है। जब आपस में विचारधाराएँ मिलती है। तो लोगों में एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना पैदा होती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति मूलतः प्रमुख तत्त्व है। कोई भी राष्ट्र अपनी सामर्थ्य व्यक्त करने के लिए विचारधारा का प्रयोग करता है। उसमें व्यक्ति की भूमिका गौण मानी जाती है। कोई भी देश अपनी सरकार व उसकी नीति अपनी जनता के बौद्धिक विकास और नैतिक मूल्यों के प्रति आर्कषण का भाव पैदा करने से लेकर सभी क्रियाकलाप का सही स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राजनीतिक मुखौटे के पीछे छुपाने की कोशिश करता है।

उदाहरण के लिए अमरीकी राष्ट्रपति वुडरों विल्सन के चौदह सूत्रों ने प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों के विजय में अत्यधिक योगदान दिया था। मित्र राष्ट्रों के हिम्मत को बढ़ाकर तथा धुरी राष्ट्रों के हिम्मत को पस्त करके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा के महत्त्व का विलक्षण उदाहरण है।

राष्ट्रीय शक्ति के तत्त्व के रूप में विचारधारा राष्ट्र के मनोबल को बढ़ाने में भूमिका निभाती है। विचारधारा के माध्यम से ही राष्ट्र में आस्था पैदा होती है। उदाहरण के लिए जब हितलर ने नयी व्यवस्था का नारा दिया तो जर्मन जनता में युद्ध के औचित्य के सम्बन्ध में एक विश्वास उत्पन्न हो गया, हितलर ने अपनी इस विचारधारा का लाभ उठाया और विदेशों में पंचमार्गियों को संगठित किया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा सीमेन्ट का काम करती है जिससे एक दूसरे राष्ट्र आपस में जुड़े होते हैं।

5.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा के लक्षणः-

विचारधाराएँ विशिष्ट और काल्पनिक तत्त्व है, इसे लक्ष्यों से पूर्ण तथा आशावादी शब्दों में परिमापित किया जा सकता है।

1-विचारधारा में हम बनाम वे तथा मित्र बनाम शत्रु स्वतंत्र व्यक्ति बनाम अत्याचारी आदि इसे सरलीकृत शब्दों में सोचने की आदत बना ली जाती है। इससे राजनीतिक विकल्पों को देखा जाता है।

2-आधुनिक विचारधाराएँ मानव प्रगति के बारे में अपने विचारों के अति आशावाद से जीवन प्राप्त करती है। प्रतिस्पर्धी स्थितियों में जो पक्ष यह विश्वास करता है। वह विजयी होना उसे वास्तविक लाभ होता है।

3-वे जीवन के कुछ मूल्यों को समेकित रूप से प्रभावित करते है।

4-महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं में सुधार के लिए विचारधारा शब्द का प्रयोग करते है।

5-वे आंशिक रूप से समूह हितों का विवेकीकरण है। लेकिन ऐसा नहीं कि उनका समर्थन करने वाले समूहों के हितों का आवश्यक रूप से विवेकीकरण हो।

6-वे सार और अर्न्तवस्तु में मानकात्मक आचार सम्बन्धी और नैतिक है।

7-उनमें तर्क होता है। अर्थात उनका उद्देश्य अपने विचारों से सहायता कराना और विरोधी विचारों का प्रतिकार करना है।

8-अपरिहार्य रूप से व्यापक विश्वास व्यवस्था में अपने सन्दर्भ से अलग किया जा सकता है। और उनमें उस व्यवस्था की संरचनात्मक व शैलीगत विशेषताओं की भागीदारी होती है।

9-विचारधारा का रूप परिवर्तित होता रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी विचारधाराएँ समान रूप से वैध नहीं होती है।

10-कभी-कभी क्रान्तिकारी विचारधारा दूसरे युग के लिए सत्तावादी विचारधारा बन जाती है।

5.3.3 विचारधारा के बारे में मार्गेंथाऊ के विचारः-

मार्गेंथाऊ ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा का विश्लेषण विदेश नीति के रूप में किया कुछ विचारधाराएँ कुछ विशेष प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों से जुड़ी होती है। मार्गेंथाऊ ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तीन प्रकार की विचारधाराओं का उल्लेख किया है।

1-यथास्थिति की विचारधाराः-

यथास्थिति की नीति में विश्वास करने वाले राष्ट्र अपने व्यवहार को विचारधारा के आवरण में छिपाना नहीं चाहते जो राष्ट्र यथास्थिति की नीति को अपनाता है वह स्वयं विचारधारा के माध्यम से शक्ति की रक्षा का प्रयत्न करता है। उदाहरण के लिए स्विटजरलैण्ड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन आदि ऐसे देश है जो यथास्थिति विचारधारा के पोषक है। जब कोई भी राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दुहाई देता है तब वह यथापूर्व स्थिति की कानूनी यथार्थता समाने रहती है। परन्तु यथापूर्व स्थिति में युद्ध की संभावना अधिक रहती है। फिर भी विश्व पटल पर यथापूर्व स्थिति को शान्तिवाद की शब्दावली में घोषित कर राजनीतिज्ञ अपने साम्राज्यवादी विरोधियों के ऊपर युद्धप्रियता का कलंक गढ़ देता है। यथापूर्व स्थिति में नैतिक आजेय तथा कानूनी आक्षेप से मुक्त होता है। फिर भी विश्व के 1/3 राष्ट्र यथास्थिति विचारधारा के पोषक है। यथास्थिति की विचारधारा सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की ओर भी प्रेरित करती है क्योंकि यथापूर्ण स्थिति के समर्थक देश इसे बदलने वाले देशों के विरूद्ध संगठित हो सकते हैं।

2-साम्राज्यवादी विचारधाराः-

साम्राज्यवादी नीति का एक ही तात्पर्य होता है यह प्रमाणित करता है कि जिस यथास्थिति को वह पलटना चाहता है वह पलटने लायक है। यथास्थिति में परिवर्तन के स्वरूप जो नीति लागू की जायेगी वह न्यायपूर्ण तथा नैतिक होगी। यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दुहाई न देकर ऐसे उच्च कानून की दुहाई देता है। जो न्याय की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। साम्राज्यवाद को विचारधारा की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। क्योंकि उसे राज्यों के जीतने की परम आवश्यकता होती है। जो उसके कानूनों का प्रतिपादन कर सके।

1- सफेदपोश का बोझ

2- राष्ट्रीय कर्तव्य

3- पवित्र विश्वास

4- क्रिश्चियन कर्तव्य आदि

साम्राज्यवादी विचारधारा ने वैचारिक नारों के माध्यम से सभ्यता को पुष्ट करने की दुहाई दी तथा उपनिवेश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए धार्मिक कर्तव्य पूरा करने की दुहाई दी, उदाहरण के लिए नेपोलियन का साम्राज्यवाद यूरोप भर में स्वतंत्रता समानता एवं भातृत्व का परचम लहराया। साम्यवाद, फांसीवाद नाजीवाद तथा जापानी साम्राज्यवाद ने इन जीव वैज्ञानिक विचारधाराओं को एक नया क्रान्तिकारी मोड़ दे दिया। साम्राज्यवादी विचारधारा के जर्मन जनता क्षेत्रहीन जनता है इस समस्या का माध्यम से समाधान हुआ यदि यह जनता रहने योग्य स्थान प्राप्त न कर पायी तो उसका दम घुटता रहेगा उसे कच्चा माल प्राप्त न हो पाया तो वह भूखो मर जायेगी।

3- अस्पष्ट विचारधाराः-

ये विचारधारा आक्रमणकारी उद्देश्यों के पूर्ति के लिए तथा साथ ही में यथास्थिति को कायम रखने के लिए प्रयोग में लायी जा सकती है। इसी कारण इसे अस्पष्टवादी विचारधारा के नाम से जानते है। राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की विचारधारा शान्ति की विचारधारा संयुक्त राष्ट्र की विचारधारा राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के सिद्धान्त की कल्पता राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने पेश किया अपने मध्य यूरोप के राष्ट्रीय समूहों की विदेशी अधिपत्य से मुक्ति को उचित ठहराया। वैचारिक दृष्टि से यह सिद्धान्त साम्राज्यवादी सिद्धान्त का विरोधी था द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ की विचारधारा को सब अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्या करने लगे प्रत्येक राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों का पोषक होता है। अस्पष्ट विचारधारा के माध्यम से नीतियों के वास्तविक चरित्र को ढ़ाकने के लिए वैचारिक साधन बन जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात शान्ति की अस्पष्ट विचारधारा अस्तित्त्व में आयी थी। शान्तिमय ईरादों के बारे में अस्पष्ट घोषणाएँ अक्सर की जाती है। वे साधारण तौर पर किसी विदेश नीति के बुनियादी उद्देश्य को छिपाने के लिए प्रयुक्त मुखौटे ही होते है। वही दूसरी तरफ वे अपनी नीतियों को सदभावना पूर्ण जीवन्तता प्राप्त करते हैं।

5.3.4 विभिन्न प्रकार की विचारधाराएँ

उदारवादी विचारधाराएँ

उदारवादी विचारधारा में समुच्चय के बारे में बहुत लचीला दृष्टिकोण अपनाता है। अगर इस विचारधारा को कठोर तरीके से प्रस्तुत किया जाए तो हद तक हो सकती है। क्योंकि इस विचारधारा में लास्की से लेकर लासवैल तक के युग में संशोधन हो गया। फिर भी इस बात का अर्थ यह स्पष्ट करता है कि विचारधारा उदारवादी विचारधारा के आधार पर वाक्य अनुरूप वातावरण के अधीन रहे। इसलिए कुछ लोगों के लिए यह विचारधारा अस्तित्वहीनता का परिचायक हो गई। इस विचारधारा को दो भागों में बांटा गया क्लासिकी और आधुनिक/ क्लासिकी विचारधारा का पुट जॉन लॉक की रचनाओं में मिलता है। जिसे आज नकारात्मक उदारवाद के नाम से जाना जाता है। आधुनिक उदारवाद का पुट हॉब हाउस के नाम से जाना जाता है। आधुनिक उदारवाद का पुट हॉब हाउस तथा लास्की में मिलता है। प्रतियोगी संघों तथा समूहों में मुक्त व्यवहार एवं राज्य के गतिविधियों में वृद्धि के समर्थक हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा:

मार्क्सवादी विचारधारा सामाजिक यथार्थ की मिथ्या चेतना कहकर उसकी निन्दा की गयी। मार्क्स ने कहा कि विचारधारा की कोई परिभाषा नहीं होती परन्तु कमोवेश विचारों की संगत प्रणाली को निर्देश दिया जा सकता है मार्क्स ने स्पष्ट कहा कि विचारधारा शब्द के निहितार्थ का सम्बन्ध वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त से लिया जाता है। क्योंकि सामाजिक वर्ग का समाज में वही स्थान है। मार्क्स का दृष्टिकोण यह निर्धारित करता है कि सामाजिक स्थिति की विचारधारा भौतिक स्थिति की विचारधारा भौतिक स्थिति के विचार की सादृश्य बन जाती है। मार्क्सवादी विचारधारा व्यावहारिकता पर अधिक बल देती है। अव्यावहारिक चिन्तन को नकारता है। मार्क्स के अनुसार विचारधारा और चेतना ही मनुष्य के मस्तिष्क को जगाती है। और इसमेंदुनियाँको बदल देने की क्षमता है।

नवमार्क्सवादी विचारधारा:-

नवमार्क्सवादी विचारधारा का मानना है कि यह काम असंगत है जो यथार्थ के अनुकूल नहीं होता है वह बेकार है। अधिक प्रभावशाली विचारधाराएँ की यथास्थिति में परिवर्तन किया जा सकता है। जो विचार आवश्यकताओं को पूरा करती है तथा उसे यूटोपिया या स्वप्नलोक कहा जाता है। नव मार्क्सवादियों का कहना था कि विचारधारा स्थिति की दृष्टि से अनुभवातीत विचारों का समूह है। जो प्रतिभाशाली वर्ग पसन्द करता है।

सर्वाधिकारवादी:-

सर्वाधिकारवादी विचारधारा में मार्क्सवादी विचार का विस्तार एवं उसका पूर्ण विरोध ढूढ़ा जा सकता है। सर्वाधिकारवादी विचारधारा में दो परस्पर विरोधी आयाम है वामपंथी या साम्यवादी साम्यवाद बुर्जआ वर्ग द्वारा श्रमिक वर्ग के शोषण और दमन के प्रतिमान के रूप में वर्तमान समय के व्यवस्था की निन्दा करता है। इसलिए वर्गविहीन समाज को लाना चाहता है। कार्ल पापर ने कहा है कि उन्हें एक खुले समाज का शत्रु बना देती है। ऐसी स्थिति में दो विचारधाराएँ आवश्यक रूप में विचारों की कार्य सम्बन्धित प्रणालियाँ है। विशिष्ट रूप से इनको प्राप्त करने के लिए उनके पास एक कार्यक्रम और नीति है। उसका आवश्यक प्रयोजन उन संगठनों को एक करना है जो उसके चारों ओर बने है।

दक्षिणपन्थी या फासीवाद:-

मुसोलिनी निरकुश राज्य का समर्थन करता है। वह एक पार्टी में विश्वास करता है। जिससे आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों पर नियंत्रण किया जा सके फासीवाद की विचारधारा एक सर्वशक्तिमान राज्य की ओर एक अप्रतिरोध सरकार पर बल दिया गया। स्वाभाविक रूप से यह कहा जा सकता है कि किसी भी विचारधारा को सामूहिक रूप से पृथक नहीं किया जा सकता है। क्योंकि विचारधारा से सभी राष्ट्र में सहभागिता की भावना पनपती है। लोग एक दूसरे के विचारों के माध्यम से नैतिक सूत्र में पिरोते हैं। किसी व्यवस्था का आंकलन उस व्यवस्था में रहने वाले लोगों के विचार से लगाया जा सकता है। यह अग्रसर होगा या विनाश हो जायेगा।

विचारधारा की भूमिकाः

1- यह उग्र भीड़ को आन्दोलन के रूप में परिवर्तित करती है।

2- यह राष्ट्र के लोगों को सीमेण्ट के तुल्य कार्य करती है।

3- यह जनता में त्याग व बलिदान की भावना लाती है।

5.3.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा की भूमिका:-

20वीं शताब्दी की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का आधारभूत प्रभाव व तत्त्व विचारधारा है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा की भूमिका और प्रभाव को इस प्रकार देखा जा सकता है।

1-विचारधारा में वह शक्ति है जो असंगठित और अव्यवस्थित गतिविधि को एक सशक्त और संगठित राजनीतिक आन्दोलन में बदल देती है। जैसे नाजीवाद और फांसीवाद का विश्व में प्रचार प्रसार

2-विचारधारा विभिन्न राष्ट्र वाले देशों एकता के सूत्र में पिरोने का काम करती है। विचारधारा देश की नीतियों को प्रोत्साहित करती है। सैनिक शक्ति का सृजन करती है।

3-विचारधारा युद्ध को भी प्रोत्साहन देती है। आक्रमणकारी गतिविधियों का विस्तार करती है।

4-विदेश नीति को कठोर बनाती है।

5-प्रतियोगी विचारधाराएँ मनमुटाव और वैमनस्य को जन्म देती है।

6-विचारधारा में कट्टरता के तत्त्व आ जाने से कूटनीतिक समझौते तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की उपयोगिता असम्भव हो जाती है।

7-विचारधारा में वह शक्ति है असंगठित और अव्यवस्थित समुदाय को संगठित कर देती है।

8-विचारधारा शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त करने का एक साधन भी है।

9-पामर एवं पार्किन्स ने कहा कि ''विचारधारा वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का शक्तिशाली साधन होता है। किन्तु वे सभी संघर्षों के शान्तिपूर्ण समाधान के कार्यों को बहुत जटिल बना देती है।

विचारधारा भावों से जुड़ी होती है। जो व्यक्ति तथा राष्ट्र के सम्बन्धों को मजबूत बनाती है। लोकतांत्रिक देशों में विचारधारा के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यवस्था के प्रतिमानों के बीच जिन्दा रहना ही विचारधारा है विचारों का युद्ध ही है जो राजनीति की सामग्री में योगदान देती है। अतः कहा जा सकता है कि विचारधाराएँ अपना रास्ता स्वयं ढूंढ लेती है। अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साध्य सही रास्ता अपनाया जाए विचारधारा एक वैज्ञानिक विधि है वैज्ञानिक और मानव होने के नाते उसके दायित्व होने का सार यही है।

5.4 सारांश:-

विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोणों के कारण विचारधारा शब्द की मानक परिभाषा प्रस्तुत करना कठिन है- विचार को तर्क और विज्ञान की द्योतक माना जाता है। विचारधारा राष्ट्र समाज विश्व स्तर पर राजनीतिक सांस्कृतिक आन्दोलन के सिद्धान्त को जागृत करता है। राजनीतिक विचारधारा जितनी अधिक संरचनात्मक होगी वह उतनी ही अधिक सामान्य होगी। कभी-कभी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा और धर्मान्धता को एक मान लिया जाता है। अलग-अलग विचारधाराओं की अलग अलग विश्वास प्रणालियाँ होती है और वे एक दूसरे की निन्दा करने का प्रयास करती है। विचारधारा के माध्यम से ही राजनीतिक यथार्थता फलती-फूलती है। विचारधारा तथ्यपरक तथा यथार्थपरक होता है। विचारधारा सामाजिक संरचनाएँ अपने आप को कब और कहा अभिव्यक्त करती है। किस अर्थ में सामाजिक संरचनाएँ पूर्ण रूप से अग्रणी संरचना का निर्धारण करती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा देशों के प्रतिस्पर्धा का अनुसरण करती है। विचारधारा मूल्यों को समेकित करके चलता है। इनमें सुधार और उन्मूलन की क्षमता होती है। वे आर्थिक रूप से सामूहिक हितों का विवेकीकरण है। राजनीतिक विचारधारा में संरचनात्मक व शैलीगत विशेषताओं की भागीदारी होती है।

5.5 शब्दावली:-

अपरिहार्य- अनिवार्य

अस्तित्वहीनता- जिसका नामो निशान न हो।

रूझान- झुकाव

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

1- विचारधारा शब्द का प्रयोग पहली बार कब हुआ।

1- 28 मई 1796 2- 23 मई 1797

2- 26 मई 1821 4- कोई नहीं

2- मार्क्सवादी विचारधारा किससे सम्बन्धित है।

1- कार्लमार्क्स 2- काट्सकी

2- लेनिन 4- हेनरी

3- क्लासिकी उदारवाद का पुट किस लेखक में मिलता है।

1- वेन्थम 2- हॉव्स

2- रूसो 4- लॉक

4- मार्गेंथाऊ ने कितने प्रकार की विचारधारा का जिक्र किया।

1- एक 2- तीन

2- दो 4- चार

5- विचारधारा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया।

1- डेस्टुट डी ट्रेसी 2- शलीचर

2- ऐटयूसर 4- थामसमूर

5.7 संदर्भ-ग्रन्थ सूची:-

1-डा0 बी0एल0 फड़िया- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

2-जौहरी, जे0सी0, राजनीतिक विचारधाराएँ, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2013

3-अरूणदत्त शर्मा, राजनीति विज्ञान, अरिहन्त पब्लिकेशन्स

4-डॉ0 पुष्पेश पंत, श्रीपाल जैन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 2002

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-डॉ0 बी0एल0, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति साहित्य भवन, 2012 फड़िया

2-जौहरी, जे0सी0, राजनीतिक विचारधाराएँ, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा, 2013

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-विचारधारा का अर्थ और उसकी प्रकृति का विवेचन कीजिए?

2-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मार्गेंथाऊ के विचारधारा का वर्णन कीजिए।

3-विचारधारा यथार्थ की मिथ्या चेतना है। आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

4-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारधारा की क्या भूमिका है?

5-विचारधारा के लक्षण बताइए?

इकाई –6: विदेश नीति के निर्धारक तत्व

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 विदेश नीति की अवधारणा
6.4 विदेश नीति के निर्धारक तत्व
6.4.1 राष्ट्र का आकर
6.4.2 भौगोलिकतत्व:
6.4 .3 आर्थिक विकास
6.4.4 तकनीकी विकास
6.4.5वैचारिक तत्व
6.4.6 इतिहास और परम्परा
6.4.7 राष्ट्रीय हित
6.4.8 सैनिक तत्व
6.4 9 नेतृत्व-व्यक्तित्व
6.4.10 भारतीय समाज
6.5 भारतीय विदेश नीति की विशेषताएं
6.5.1 गुट निरपेक्षता की नीति
6.5.2 विश्व शांति की नीति
6.5.3 पंचशील सिद्धांत
6.5.4 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध
6.5.5 प्रजातीय विभेद का विरोध
6.5.6 सयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का विश्वास
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रन्थ
6.10 सहायक - उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारत विश्व में एक विस्तृत भूभाग और विशाल जनसख्या वाला देश है | अत : इसकी विदेश नीति का विश्व की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है | स्वतंत्रता से पूर्व भारत की कोई विदेश नीति नहीं थी क्योकि भारत ब्रिटिश सत्ता के अधीन था, परन्तु विश्व मामलों में भारत की एक सुदीर्घ परम्परा रही है | इसका सांस्कृतिक अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है | न केवल पड़ोसी देशो के साथ, अपितु दूर - दूर के देशो के साथ भी भारत का सांस्कृतिक एवं व्यापारिक आदान-प्रदान होता रहा है | आज भी अनेक पड़ोसी देशो पर उसकी सांस्कृतक छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है | भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता हुआ और अपनी स्वतंत्रता के साथ ही विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश बन गया |

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मुख्यत: विदेश नीति की अवधरणा, इसका अर्थ, भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्व और बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति पर पड़ने वाले प्रभावों तथा विदेश नीति को प्रभावित करने वाले बाह्य कारको का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे, वैश्वीकरण के दौर में भारतीय विदेश नीति कहा तक सफल रही है यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है |

इस इकाई को पढ़ने और समझने के पश्चात हम :-

- विदेश नीति की अवधारणा से परिचीत हो सकेंगे |
- बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति कहा तक सफल रही है से परिचय हो पाएंगे |
- भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करने वाले कारको को जान सकेंगे |
- भारतीय विदेश नीति की मूलभूत विशेषताओं के महत्व को समझ सकेंगे |

6.3 विदेश नीति की अवधारणा

अंतर्राष्ट्रीय संबंधो का निर्धारण प्राय: विदेश नीति के आधार पर होता है | प्रत्येक देश पहले अपने राष्ट्रीय हितों की समीक्षा करता है और फिर उन सिद्धांतों को निश्चित करता है जिन पर उसकी विदेश नीति आधारित होगी | किसी भी देश की विदेश नीति उसके राजनीतिक उद्देश्यों और महत्वपूर्ण कारको पर अधारित होती है जो यह स्पष्ट करता है कि कोइ देश विश्व के अन्य देशों और अन्य गैर - राजकीय संस्थाओं के साथ किस तरह के सम्बन्ध स्थापित करेगा | देश की विदेश नीति को प्रभावित करने वाले ये कारक घरेलु और बाह्य दोनों तरह के होते है| विदेश नीति का निर्माण प्राय: किसी देश के राष्ट्रीय हितों, राष्ट्रीय सुरक्षा, विचारधारा तथा आर्थिक विकास को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है | सामान्यता: विदेश नीति के निर्माण का उत्तरदायित्व सरकार के अध्यक्ष एवम विदेश मंत्री का होता है परन्तु इसकी निर्माण प्रक्रिया में कई प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समूहों वर्गो अथवा वर्ग हितो के दबाव कार्य कर रहे होते है |

6.4 विदेश नीति के निर्धारक तत्व

भारतीय विदेश नीति को निर्धारित करने वाले निम्नलिखित कारक है :-

6.4.1 राष्ट्र का आकर

राष्ट्र का आकार विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण तत्त्व होता है | आकार, उस मनोवैज्ञानिक तथा परिचालक वातावरण को प्रभावित करता है जिसमें नीति - निर्माताओं तथा लोगों ने प्रतिक्रिया करनी होती है | बड़े आकार वाले राज्य से छोटे आकार वाले राज्य की विदेश नीति भिन्न होती है | बड़े आकार वाले राज्य की विदेश नीति निश्चय ही अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी शक्ति बनने की इच्छा द्वारा संचालित होती है | अमरीका, रूस, जर्मनी, फ्रांस, चीन, भारत तथा अन्य सभी राज्यों की विदेश नीतियों में आकार एक महत्वपूर्ण तत्व है | बड़े आकार वाले राज्य सदैव सक्रिय विदेश नीति बनाते है, जिसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में प्रमुख भूमिका निभने का प्रयास करते है |

भारत अपने आकार के कारण दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा देश है | भारत की केवल अफगानिस्तान को छोड़कर सार्क के सभी देशो के साथ साझी सीमाएँ हैं और अपने आकार एवं आबादी की दृष्टि से यह इन सभी देशो में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति का लाभ उठा रहा है | इसके आलावा, भारत की विश्व के सभी देशो में एक विशिष्ट स्थिति है | क्योकि यह सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है | यह क्षेत्र की दृष्टि से विश्व का सातवा बड़ा देश है और विभिन्न भाषाओ एवं प्रादेशिक विविधताओं वाला विश्व में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है | ये सभी विशेषताएँ वैशिवक शक्तियों द्वारा भारत को भी इसमें शामिल करने के लिए उन्हें प्रभावित करती हैं |

6.4.2 भौगोलिक तत्व:

किसी भी देश के विदेश नीति के निर्माण में, उस देश की भौगोलिक परिस्थितियां प्रमुख और निर्णायक भूमिका निभाती है | **के. एम. पणिक्कर** के अनुसार, "जब नीतियों का लक्ष्य प्रादेशिक सुरक्षा होता है तो उसका निर्धारण मुख्य रूप से भौगोलिक तत्व से हुआ करता है | **नेपोलियन बोनापार्ट** ने भी कहा था कि " किसी देश की विदेश नीति उसके भूगोल द्वारा निर्धारित होती है |" **डा. एयर्स** का मत भी है कि "समझोते तोड़े जा सकते है, सन्धियां भी एक तरफा समाप्त की जा सकती है, परन्तु भूगोल अपने शिकार को कसकर पकड़े रहता है |" भारत के संदर्भ में उपर्युक्त बाते सही है | भारत की विदेश नीति के निर्धारण में भारत के आकार, एशिया में उसकी विशेष स्थिति तथा दूर - दूर तक फैली हुई भारत की सामुद्रिक और पर्वतीय सीमाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है | नेहरूजी ने 1949 में कहा था की भारत की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसके कारण कोई भी देश भारत की उपेक्षा नहीं कर सकता | भारत उत्तर में साम्यवादी गुट के दो प्रमुख देशो - पूर्व सोवियत संघ और चीन के बिलकुल समीप है | भारत के एक छोर पर पाकिस्तान है तो दूसरे छोर पर उसकी सीमा समुद्रो से घिरी हुई है | स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद अपनी लम्बी सीमाओ की सुरक्षा भारत के लिए मुख्य चिंता का विषय था | यदि भारत साम्यवादी गुट में सम्मिलित हो जाता तो उसकी समुद्री सीमा पर खतरा उत्पन्न हो जाता, क्योकि पश्चिमी गुट का अपनी नौ-शक्ति के कारण हिन्द महासागर पर दबदबा था | यदि भारत पश्चिमी गुट में सम्मिलित होता तो उत्तरी सीमा पर साम्यवादी राष्ट्र उसके लिए स्थाई खतरा उत्पन्न कर सकते थे | इन भौगोलिक परिस्थितियों में विदेश नीति की दृष्टि से भारत के लिए यह उचित है की वह दक्षिण में समुद्री सीमा सुरक्षित बनाये रखने के लिए ब्रिटेन से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उत्तर में अपनी स्थिति सुरक्षित रखने के लिए साम्यवादी देशो से अनुकूल संबंध बनाये रखने की चेष्टा करे |

हिमालय और हिन्द महासागर दोनों ही भारत की सुरक्षा में बहुत बड़ी भूमिका अदा करते है | हिमालय को भारत का प्रकृतिक सुरक्षा पहरी के रूप में देखा जाता है और दूसरी ओर हिन्द महासागर से जुडी लगभग 7516 कि. मी. की समुंद्री सीमा कि सुरक्षा के लिए नई और मजबूत नौ सेना की जरूरत है | ताकि वह महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा को हिन्द महासागर में रोक सके | हिन्द महासागर में भारत का सबसे बड़ा हित यह है कि वह 'स्वतंत्रता एवं शांति का क्षेत्र' बना रहे | अतः भारत ने डियागो गार्शिया में अमरीकी सैनिक अड्डो का उतना ही विरोध किया जितना की वह इस क्षेत्र में बढ़ते हुए सोवियत प्रभाव का विरोधी रहा है | भारत की धारणा है कि इस क्षेत्र में महाशक्तियों की गतिविधियाँ बढ़ जाने से उसकी सीमाओं एवं व्यापार को खतरा उत्पन्न हो सकता है |

6.4.3 आर्थिक विकास

किसी भी देश की विदेश नीति में आर्थिक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है | भारत की आर्थिक उन्नति तभी संभव थी जब अंतर्राष्ट्रीय शांति बनी रहे | आर्थिक दृष्टि से भारत का अधिकांश व्यापार पाश्चात्ये देशो के साथ था और पाश्चात्ये देश भारत का शोषण कर सकते थे | भारत अपने विकास के

लिए अधिकतम विदेश सहायता का भी इच्छुक था | इस दृष्टिकोण से भारत के लिए सभी देशो के साथ मैत्री का बर्ताव रखना आवश्यक था और वह किसी भी एक गुट से बंध नहीं सकता था | गुटबंदी से अलग रहने के कारण उसे दोनों ही गुटो से आर्थिक सहायता मिलती रही, क्योकि कोई भी गुट नहीं चाहता था की भारत दूसरे गुट के प्रभाव - क्षेत्र में आ जाए |

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय विदेश नीति के ये मुख्ये निर्धारक रहे जिसका विवेचन निम्नलिखित रूपों से किया जा सकता है :-

1.भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी ताकि शांति को प्रोत्साहन देते हुए वह दोनों गुटो से आर्थिक सहायता प्राप्त करता रहे |

2.भारत जैसे विशाल और महान देश के लिए यह स्वभाविक था की वह ऐसी विदेश नीति का अनुसरण करता जिससे स्वयं के निर्णय शक्ति पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ सके |

3.भारत के नीति - निर्माताओं ने यह भली-भांति समझ लिया की उनका देश विश्व के पूंजीवादी और साम्यवादी शिविरों के साथ मित्रता स्थपित करके दोनों को अपनी और आकर्षित कर सकता है |

6.4.4 तकनीकी विकास

स्वतंत्रता के समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश होने के साथ अविकसित प्रौद्योगिकी और निम्न स्तर का औद्योगीकरण था , जिसकी वजह से भारत तकनीकी विकास और औद्योगीकरण के लिए विकसित राष्ट्रों के आयात पर निर्भर करता था | परन्तु बाद में भारत ने धीरे -धीरे तकनीकी और औधोगिक विकास किया, भारतीय वैज्ञानिको ने तकनीकी में सफलता प्राप्त कर ली है | आज भारत तीसरीदुनियाँके देशो में अपनी नई तकनीक और औधोगिक मॉल निर्यात कर रहा है | राकेट टेक्नोलॉजी, सैटेलाइट टेक्नोलॉजी, एटॉमिक टेक्नोलॉजी और बढ़ता हुआ औधोगिक उत्पादन इन सभी ने भारत की भूमिका को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर और ज्यादा बढ़ा दिया है | भारत और विकसित राष्ट्रों के बीच आज भी बहुत बढ़ा अंतर है भारत आज भी विकासशील राष्ट्र है जो अपने विकास के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर करता है | अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओ पर भारत की लगातार बढ़ती निर्भरता उसकी विदेश नीति की सफलता में एक बड़ा खतरा बन सकती है |

6.4.5 वैचारिक तत्व

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में शांति और अहिंसा पर आधारित गाँधीवादी विचारधारा का भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है | इस विचारधारा से प्रभावित होकर ही संविधान के अनुच्छेद ५१ में विश्व शांति की चर्चा की गई है | भारत के द्वारा हमेशा ही विश्व शांति और शांतिपूर्ण सह - जीवन का समर्थन तथा साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का घोर विरोध किया गया है | भारत ने लोकतान्त्रिक

समाजवाद को अपनी शासन व्यवस्था का आधार बनाया है | भारत की विदेश नीति की नींव डालने वाले पं. जवाहरलाल नेहरू पाश्चात्य लोकतंत्रीय परम्परा से बहुत प्रभावित थे | वे पश्चिमी लोकतंत्रवाद और साम्यवाद दोनों की अच्छाइयों को पसंद करते थे | इस प्रकार की समन्वयकारी विचारधारा ने गुट निरपेक्षता की नीति के विकास में योगदान दिया |

6.4.6 इतिहास और परम्परा

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में ऐतिहासिक परम्पराओं का भी बडा योगदान रहा है | प्राचीनकाल से ही भारत की पहचान एक सहिष्णु और शांतिप्रिय देश के रूप में रही है | भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का शिकार हुआ लेकिन उसने स्वयं कभी भी किसी भी देश पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया | भारत की यह परम्परा विदेश नीति में स्पष्ट दिखायी देती है |

हिन्दू सभ्यता का चरित्र और उसकी विशेषताएं; जैसे - शांति , समन्वय और सहिष्णुता की भावनाए हमारी विदेश नीति का बहुत बड़ा आधार है | 190 वर्षो के अंग्रेजी शासन का भी हमारी विदेश नीति के निर्धारण में बहुत बडा योगदान रहा है | देश में संसदीय प्रणाली, उदारवाद, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग, प्रशासनिक ढाँचा, आदि इसके प्रमाण है | ब्रिटिश साम्राज्यवाद का हमारा कटु अनुभव इसके मूल में है | भारत का शुरु से ही पाकिस्तान के साथ शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध रहा | पाकिस्तान ने भारत पर एक के बाद एक आक्रमण किए और प्रत्येक युद्ध में भारत ने पाक को हराया लेकिन भारत ने कभी भी उस पर अपनी शर्ते आरोपित नहीं की | साम्यवादी चीन ने भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाया और १९६२ में भारत पर आक्रमण करके इसके विशाल भू - भाग पर अधिकार कर लिया इसके बावजूद भारत चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए प्रयत्नशील है | इसके साथ ही दक्षिण - पूर्व एशियाई राष्ट्रों के साथ सांस्कृतिक व आध्यात्मिक सम्बन्ध भी ऐतिहासिक अनुभवों के परिणाम है |

6.4.7 राष्ट्रीय हित

किसी भी देश की विदेश नीति प्राय: राष्ट्रीय हित को ध्यान में रख कर निर्धारित होती है स्वयं नेहरू ने भी संविधान सभा में कहा था की "किसी भी देश की विदेश नीति की आधारशीला उसके राष्ट्रीय हित की सुरक्षा होती है और भारत की विदेश नीति का ध्येय यही है" | भारत के भी अपने राष्ट्रीय हित है जिनकी छाप भारत की विदेश नीति पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है | भारत के दो प्रकार के राष्ट्रीय हित है स्थायी हित जैसे की अखंडता और सुरक्षा तथा दूसरा अस्थायी राष्ट्रीय हित जैसे खाद्यान, विदेशी पूंजी, तकनीकी विकास आदि |

यदा - कदा भारत की विदेश नीति में विरोधाभास दिखाई देता है, यह इस बात को सिद्ध करता है की भारत की विदेश नीति में राष्ट्रीय हितो का सबसे बड़ा स्थान है | राष्ट्रीय हितो के सन्दर्भ में ही भारत ने पश्चिमीएशिया के संकट में इजरायल के बजाय अरब राष्ट्रों का सदैव समर्थन किया | गुट - निरपेक्ष होते हुए भी 9 अगस्त 1971 को सोवियत संघ के साथ एक 20 वर्षीय संधि की | भारत की विदेश नीति दूसरे देशो के आतंरिक मामलो से हस्तक्षेप के विरूद्ध है, परन्तु अपने राष्ट्रीय हितो को ध्यान में रखते हुए ही भारत ने अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप की भर्त्सना नहीं की| भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के 14 जनवरी 1980 के उस प्रस्ताव के मतदान में हिस्सा ही नहीं लिया जिसमे अफगानिस्तान से विदेशी सेनाओं तत्काल बिना शर्त और पूर्ण वापसी की बात कही गयी थी | भारत ने 5 जून, 1987 को मानवीय आधात पर श्रीलंका में जाफना की पीड़ित जनता का लिए हवाई मार्ग से रहत सामग्री पहुंचायी | स्वतंत्रता के बाद के इतिहास में यह पहला अवसर था जब भारत ने किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन किया | निशस्त्रीकरण का प्रबल समर्थक होते हुए भी भारत ने अणु अप्रसार संधि (N.P.T.) तथा व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) पर हस्ताक्षर करने से साफ इंकार कर दिया क्योकि भारत का नाभिकीय विकल्प राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अंग है |

6.4.8 सैनिक तत्व

नवोदित भारत सैनिक दृष्टि से निर्बल था अतः विदेशी नीति के निर्धारकों ने यह उपयुक्त समझा की दोनों गुटो की सहानुभूति अर्जित की जाये | यह तभी संभव था जब गुटनिरपेक्षता और सह - अस्तित्व की नीति अपनाई जाती | अपनी रक्षा के लिए अनेक दृष्टियों से वह पूरी तरह विदेशो पर निर्भर था | भारत की दुर्बल सैनिक स्थिति उसे इस बात के लिए बाध्य करती रही की विश्व की सभी महत्वपूर्ण शक्तियों के साथ मैत्री बनाये राखी जाये | प्रारम्भ से ही भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहा, उसका भी यही राज था कि सैनिक दृष्टि से भारत ब्रिटेन पर ही निर्भर था |

6.4.9 नेतृत्व-व्यक्तित्व

भारत की विदेश नीति पर वैयक्तिक तत्वों का विशेषकर पंडित नेहरू के व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव रहा | पंडित जवाहरलाल नेहरू न केवल भारत के प्रधान मंत्री थे, अपितु विदेश मंत्री भी थे उनके व्यक्तित्व की छाप विदेश नीति के हर पहलू पर झलकती है | वे साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, और फासीवाद के प्रबल विरोधी तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के प्रबल समर्थक थे | वे मैत्री, सहयोग और सहअस्तित्व की विचारधारा के पक्ष पाती थे | नेहरू जी महाशक्ति के संघर्ष में भारत के लिए ही नहीं अपितु विश्व के समस्त नवस्वाधीन राष्ट्रों के लिए असंलग्नता की नीति को सर्वोत्तम मानते थे | अपने इन्ही विचारो के अनुरूप उन्होंने भारत की विदेश नीति को ढाला और आज इसका जो कुछ भी रूप है वह पंडित नेहरू के विचरो का ही मूर्त रूप है |

लेकिन स्वयं नेहरू इसे नहीं मानते थे | उन्होंने एक बार कहा था की **"भारत की विदेश नीति को नेहरू नीति कहना सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है** | यह इसलिए गलत है की मैंने केवल इस नीति का शब्दों में प्रतिपादन किया है, मैंने इसका अविष्कार नहीं किया | यह भारतीय परिस्थितियों की उपज है | वैयक्तिक रूप से मेरा यह विश्वास है की भारत के वैदेशिक मामलो की बागडोर यदि किसी अन्य व्यक्ति या दल के हाथ में होती तो उसकी नीति वर्तमान नीति से बहुत भिन्न न होती |" पंडित नेहरू के अतिरिक्त राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, विदेश मंत्री वी. के. कृष्ण मेनन और के. एम. पणिक्कर भी उन विशिष्ट व्यक्तियों में थे जिन्होंने भारत की विदेश नीति को प्रभावित किया |

6.4.10 भारतीय समाज

सामाजिक स्तर पर भारत एक बहुलवादी समाज रहा है जिसमें, बिभिन्न जातियां, उपजातियां, वर्ग, विचारधारायें, भाषायें, धर्म, नस्लों आदि का सम्मिश्रण रहा है | राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सभी दृष्टिकोणों से यह भिन्नता का देश रहा है | अत: भारत की इस बिभिन्नता में एकता बनाये रखने के लिए भारत को ऐसी विदेश नीति अपनाने की आवश्यकता थी जो सभी राष्ट्रीयताओं अथवा उप - राष्ट्रीयताओं को संतुष्ट कर सके | परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए भारत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बिभिन्न राज्यों में समझौता, तालमेल तथा सहयोग की नीति अपनाने में जोर दिया | जहा भारत पश्चिम की उदारवादी प्रजातांत्रिक परम्पराओं से प्रभावित हुआ, वह यह मार्क्सवादी समाज की उपलब्धियों का भी प्रशंसक रहा और अपनी समझौतावादी नीति के अनुरूप दोनों को उचित सम्मान दिया |

6.5 भारतीय विदेश नीति की विशेषताएं

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्माण में अनेक तत्वों का योगदान होता है| भारत की विदेश नीति के निर्माण में भी अनेक तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है | ये तत्व या कारक आंतरिक वातावरण और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों, दोनों से संबंधित है जिनका विस्तृत वर्णन उपर्युक्त किया जा चूका है | भारत के नीति निर्माताओं ने कुछ विदेश नीति से संबधित कुछ सिद्धांतों एवं उद्देश्यों को भी निश्चित किया जिन पर भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंध आधारित थे |भारत की विदेश नीति का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित विशेषताएं भारतीय विदेश नीति में दिखाई पड़ती है |

6.5.1 गुट निरपेक्षता की नीति

विश्व राजनीति में भारतीय दृष्टिकोण मुख्यत गुट निरपेक्षता का रहा है | इसे भारतीय विदेश नीति का सार कहा जाता है | राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म हुआ | स्वतंत्र भारत के समक्ष यह विकट समस्या थी की वह किस गुट में शामिल हो और किसमे नहीं? भारत के समक्ष दो मार्ग थे - या तो किसी एक गुट के साथ मिलकर संसार के संघर्ष क्षेत्र को और अधिक व्यापक करने में अपना योगदान दे या फिर गुटबन्दियों से दूर रहकर दो विरोधी गुटों में मेल मिलाप कराने का यत्न करे | बहुत विचार विमर्श

के पश्चात भारत ने किसी गुट में शामिल न होना स्वीकार किया, गुटबंदी में शामिल होना न तो भारत के हित में था और न ही संसार के, अत: भारत ने दोनों गुटो से अलग रहने की जो नीति अपनाई उसे गुट निरपेक्षता की नीति के नाम से जाना जाने लगा जिसके अंतर्गत भारत अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रश्नो पर गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करते हुए उनकी वास्तविकता का ध्यान रखते हुए स्वतंत्रता रूप से सभी प्रश्नो पर अपना निर्णय देता है | स्वतंत्रता से लेकर आज तक भारत गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करता आ रहा है |

6.5.2 विश्व शांति की नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विश्व शांति की स्थापना के लिए सदातत्पर रहना और इस महान कार्य में योगदान करना भारतीय विदेश नीति का एक मूल तत्व बन गया है भारत ने इस तरह अपनी विदेश नीति का निर्धारण करना शुरू किया जिनसे विश्व की शांति सुरक्षित रहे इसी उद्देश्य से प्रेरित हो कर उस ने गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण किया क्योकि गुटबंदी और हथियारों की होर को बढ़ावा देना विश्व शांति के लिए बहुत अधिक खतरनाक है विश्व शांति के लिए ही भारत ने निशस्त्रीकरण का जबरजस्त समर्थन किया क्योकि खतरनाक आणविक हथियारों का अस्तित्व तीसरे विश्व युद्ध का कारण बन सकता है इसलिए 1953 में जब आणविक परीक्षण रोक संधि हुई तो भारत वह पहला देश था जिसने अविलम्ब इस संधि पर हस्ताक्षर किये आज भी इस दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आया है भारत ने हर उस निर्णय की आलोचना की जो की विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है |

6.5.3 पंचशील सिद्धांत

पंचशील सिद्धांत को भारत की विदेश नीति की आधारशिला कहा जाता है जून 1954 में अपनाये गए सिद्धांत ने भारतीय विदेश नीति को एक नई दिशा प्रदान की ये सिद्धांत निम्नलिखित है

1.एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और संप्रभुता का सम्मान करे

2.एक - दूसरे राज्य पर अनाक्रमण

3.अहस्तक्षेप की नीति

4.पारस्परिक सहयोग और समानता का व्यवहार

5.शांतिपूर्ण सहअस्तित्व

इन सिद्धांतों का निर्धारण तिब्बत के संबंध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझोते में किया गया था जिसमे चीन और भारत ने आपसी संबंधो के संचालन के लिए इन पांच सिद्धांतों के पालन का निश्चय किया, की वे एशिया तथा विश्व के अन्य देशो के साथ अपने संबंधो में भी इनका अनुसरण करेगा |

6.5.4 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध

भारत स्वयं एक लम्बे अरसे तक उपनिवेशवाद का शिकार रहा यही कारण था की विश्व में जहां कहीं भी राष्ट्रवादी आंदोलन विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने के लिए हुए भारत ने खुल कर उसका समर्थन किया साम्राज्यवादी राष्ट्रों की कटु आलोचना की | इण्डोनेशिया पर जब हॉलैण्ड ने दूरसे विश्व युद्ध के बाद पुनः अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया तो भारत ने इसका घोर विरोध किया | इसके साथ - साथ भारत सयुक्त राष्ट्र संघ में भी उपनिवेशवाद के विरुद्ध बराबर आवाज उठाता रहा है | भारत इस बात पर भी जोर देता रहा है की स्वशासन करने वाले देशो का शासन राष्ट्र संघ के चार्टर के सिद्धांतों के अनुसार किया जाना चाहिए इसमें कोई संदेह नहीं है की साम्राज्यवाद को जड़ से हिलाने में भारत बहुमूल्य योगदान रहा है |

6.5.5 प्रजातीय विभेद का विरोध

भारत सभी लोगो को समान मानता है तथा उनमे रंगभेद के आधार पर भेदभाव का पूर्ण विरोध करता है | अपनी इसी वैदेशिक नीति के सिद्धांत के आधार पर ही भारत ने दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी शासन की कड़ी आलोचना की जहा पर लोगो के मध्य गोर और काले का विभेद मौजूद था | इसके विरोध में भारत ने न केवल दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध कुछ प्रतिबंध लगाये बल्कि कूटनीतिक संबंधो का विच्छेद भी किया | भारत के प्रयास के फलस्वरूप ही सयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व के अन्य राष्ट्रों ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार को इस नीति को छोड़ने के लिए बाध्य किया|

6.5.6 सयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का विश्वास

भारत शुरू से ही सयुक्त राष्ट्र संघ का प्रबल समर्थक रहा है | सयुक्त राष्ट्र संघ की विचारधारा का समर्थन करने तथा इसके क्रियाकलापों में सक्रियता, सकारात्मक तथा रचनात्मक रूप में भाग लेना भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धांतरहा है | भारत नेअन्तर्राष्ट्रीयझगड़ो का निपटारा हमेशा ही सयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में करने की नीति अपनायी | इसकी संबंध संस्थाओ में भी भारत की सक्रिय भागीदारी रही है | अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ तथा सयुक्त राष्ट्र आर्थिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतक संगठनो के कार्यो में उसकी विशेष रूचि रही है | इस प्रकार भारत सयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थक है यह भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण पहलु है |

इस प्रकार भारत की विदेश नीति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने से ही स्पष्ट होता है की अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत की प्रतिष्ठा इसकी विदेश नीति के करण ही है क्योकि इसमें विश्व शांति, सहअस्तित्व और सयुक्त राष्ट्र संघ में एवं सिद्धांत है जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत को एक नई पहचान दी है|

अभ्यास प्रश्न

1.भारत की विदेश नीति के मूल तत्व कौन से है ?

A.गुटनिरपेक्षता की नीति B. साम्राज्यवाद और प्रजातीय भेदभाव का विरोध

C.शांति की विदेश नीति D.उपर्युक्त सभी

2. भारत ने किस देश की रंगभेद नीति का विरोध किया

A.नेपाल B. पाकिस्तान

C.दक्षिण अफ्रीका D.घाना

3. ताशकंद समझौते के लिए किसने मध्यस्थता की ?

A.अमेरिका B. सोवियत संघ

C.फ्रांस D.चीन

4. १९९७ में भारत के किस प्रधानमंत्री ने नेपाल की ?

A.देवगौड़ा B. अटल बिहारी वाजपेयी

C.विश्वनाथ प्रतापसिंह D.श्री इंद्र कुमार गुजराल

6.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हमने, "विदेश नीति का अर्थ, भारतीय विदेश नीति की अवधारणा, बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति के महत्व और भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्वों का अध्ययन किया है | 1947 के बाद भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण, भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में किया जिसकी आधारशिला गुट-निरपेक्षता थी| भारतीय विदेश नीति की रुपरेखा आज भी उतनी ही सफल है जितनी की पहले थी परन्तु बदलते परिवेश में भारत को कई उत्तार चढ़ाव का सामना करना पड़ा जिससे विदेश नीति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये परन्तु इसके वावजूद भी भारत ने गुट – निरपेक्षता की नीति का त्याग नहीं किया | भारत की विदेश नीति का विश्व के सिद्धान्तो में अपना विशेष महत्व है | आज भारत विश्व में विकसित देशो की बराबरी बहुत से क्षेत्रों में करता हुआ दिखाई दे रहा है और अगले 20 सालो में भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर कर विश्व के एक विकसित देश के रूप में अपनी पहचान बनाने की ओर अग्रसर है |

6.7 शब्दावली

प्रस्तावना - परिचय, भूमिका, इत्यादि

साम्राज्यवाद - किसी अन्य देश पर राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लेना

उपनिवेशवाद - किसी देश द्वारा अपने आर्थिक लाभ के लिए दूसरे देश में उपनिवेश स्थापित करना |

गुट – निरपेक्षता - किसी भी शक्ति गुट में शामिल न होना, स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना |

निःशस्त्रीकरण - एक ऐसा अधिनियम जिसके द्वारा हथियारों की होड़ को कम करना

6.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.A, 2. .C. 3. .B. 4.D

6.9 संदर्भ ग्रन्थ

Appadorai A (1981), "*India's Foreign Policy*", Oxford University Press, New Delhi.

Dixit, J. N.(200),*India's Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India's Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

J.Bandyopadhyaya (2003), *The Making of India's Foreign Policy-Determinants, Institutions, Processes and Personalities*, New Delhi: Allied Publishers Pvt. Limited.

आर. सी. वरमानी (2012), समकालीन अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

13.12 सहायक - उपयोगी पाठ्य सामग्री

Rajan, M.S. (1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Kissinger Henry (1994), Diplomacy, New York, Simon and Schuster.

Waltz Kenneth (1979), Theory of International Politics, New York, McGraw Hills.

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

१.भारतीय विदेश नीति और बदलते समय में उस पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करो ?

२.गुटनिरपेक्षता भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषता है विवेचन करो ?

३.क्या भारतीय विदेश नीति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है ?

४.भारतीय विदेश नीति की मुलभुत विशेषताओं का अध्ययन करो ?